भुवन दीपक

(Horary Astrology)

व्याख्या:

डा. शुकदेव चतुर्वेदी

ज्योतिषाचार्य

प्रश्न शास्त्र की प्राचीन
एवं सर्वांगपूर्ण पुस्तक

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार की
शास्त्री परीक्षा के लिए निर्धारित पाठ्य पुस्तक

श्री पद्म प्रभुसूरि विरचित

भुवन दीपक

विज्ञान भाष्य
(HORARY ASTROLOGY)

सम्पादक एवं भाष्यकार

डॉ० शुकदेव चतुर्वेदी

ज्योतिषाचार्य

मूक प्रश्न विचार, प्रश्न ज्ञान [भट्टोत्पल कृत]
प्रश्न मार्ग, दैवज्ञ वल्लभा [वराह मिहिर कृत]
दाम्पत्य सुख [ज्योतिष के झरोखे से]
आदि ग्रंथों के प्रणेता

रंजन पब्लिकेशन्स
१६, अन्सारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
4360/4, Ansari Road, Darya Ganj,
New Delhi-110002
Ph. 011-42637180, 41530902
Email : info@chaukhambabooks.in

प्रकाशक :
रंजन पब्लिकेशन्स
16, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
दूरभाष : 23278835, 23282998

© सर्वाधिकार : प्रकाशकाधीन

संस्करण : सन् 2018

मूल्य : 80/-

मुद्रक : हर्ष प्रिन्टर्स 110032

एक दृष्टि में

प्रश्न का फल विचार करने हेतु प्राथमिक जानकारी
प्रत्येक भाव से विचारणीय प्रश्न
प्रश्नकालीन लग्न एवं चन्द्रमा के महत्व का निरूपण
लग्नेश और कार्येश के सम्बन्ध से कार्य सिद्धि योग
विनष्ट ग्रह के प्रभाववश कार्यनाश
चार महत्वपूर्ण राजयोग
कार्य कितने दिनों में होगा ? उसकी अवधि का ज्ञान;
गर्भ; गर्भपात एवं गर्भ में जुड़वां बच्चों के योग;
पुत्र का जन्म होगा या कंन्या का ?
विवाह एवं दाम्पत्य सुख विचार
क्या प्रेमिका से विवाह होगा ?
मुकदमा; लड़ाई एवं अन्य विवादों से हारजीत विचार
अचानक लाभ योग
प्रवास से निवृत्ति और विदेश में मृत्यु योग
रोग विचार—रोग की वृद्धि और समाप्ति, रोग निर्णय
चोरी गयी वस्तु, घर से भागा प्राणी मिलेगा या नहीं
विविध वस्तुओं की तेजी-मन्दी का निर्णय
प्रश्न कुण्डली बनाना

इस पुस्तक के बारे में

ज्योतिषशास्त्र फलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते भारतीय मनीषियों की इस मान्यता के अनुसार दैनन्दिन जीवन में घटने वाली विविध घटनाओं का विचार एवं विवेचन कर आदेश करना ही ज्योतिषशास्त्र का एकमात्र लक्ष्य है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए फलित ज्योतिष में जातक ताजिक, प्रश्न, शकुन एवं सामुद्रिक आदि अनेक मार्ग बतलाये गये हैं। किन्तु इन सबमें प्रश्नशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कारण यह है जातक एवं ताजिकशास्त्र का फलोदेश जन्म समय पर आधारित होता है और लोगों को सामान्यतया अपना ठीक-ठीक जन्म समय ज्ञात नहीं होता। ठीक जन्म समय की जानकारी न होने के कारण प्रायः ९५% जन्मपत्र अशुद्ध पाये जाते हैं। सामुद्रिक एवं शकुनशास्त्र पर आधारित फलोदेश भी एक प्रकार का अनुमानजन्य ज्ञान है, किन्तु इसकी प्रक्रिया उतनी सरल एवं स्पष्ट नहीं है कि साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य भी इसके द्वारा भविष्यत् के विषय में निश्चित जानकारी प्राप्त कर सके। केवल प्रश्नशास्त्र ही वह सरलतम मार्ग है, जिसका अवलम्बन कर मनुष्य दैनिक जीवन में सामने आने वाले समस्त प्रश्नों का समाधान खोज सकता है।

प्रश्नशास्त्र जन्मपत्रिका एवं वर्षफल जैसी किसी लम्बी-चौड़ी गणित के बिना ही मात्र प्रश्न कुण्डली के आधार पर जटिलतम प्रश्नों का सूक्ष्म एवं स्पष्ट फल बतलाता है। इस शास्त्र में प्रश्न का फल विचार करने की मुख्यतः तीन रीतियां प्रचलित हैं

(क) प्रश्नकालीन समय-सिद्धान्त : यह सिद्धान्त समय के शुभाशुभत्व पर आधारित है, जिसका निर्णय प्रश्नकालीन कुण्डली में ग्रह स्थिति एवं ग्रह योगों द्वारा किया जाता है।

(ख) प्रश्नकालीन स्वर-सिद्धान्त : यह सिद्धान्त आदेशकर्ता के स्वर (श्वास) के आगमन और निर्गमन द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण करता है। ब्रह्माण्डवाद, पूर्व-निश्चयवाद एवं अदृष्ट पर आधारित होने के कारण यह सिद्धान्त कुछ जटिल माना गया है।

(ग) प्रश्नाक्षर सिद्धान्त : प्रश्नकर्ता द्वारा उच्चारित प्रश्नाक्षरों से मानसिक स्थिति का पता लगाकर भावी फल का निर्णय इस सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है। यह सिद्धान्त मनोविज्ञान पर आधारित है और विशुद्ध तात्कालिक प्रश्नों का विवेचन करता है।

उक्त तीनों सिद्धान्तों में पहला समय-सिद्धान्त विज्ञानसम्मत होने के कारण अधिक लोकप्रिय और समाज में प्रचलित है। पाँचवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक इस सिद्धान्त पर आधारित शताधिक ग्रन्थों की रचना हुई है। प्रश्नशास्त्र के इन ग्रन्थों में, आचार्य पद्मप्रभु सूरि विरचित *भुवनदीपक* सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है।

यह ग्रन्थ प्रश्नशास्त्र की जटिल गुत्थियों का विवेचन करने के कारण विद्वत्समाज में प्रचलित होते हुए भी अत्यन्त दुरूह माना गया है। अतः इस ग्रन्थ पर, साधारण जिज्ञासुओं तक के लिए बोधगम्य, सरल एवं सोदाहरण भाष्य लिखने की ओर मैं प्रवृत्त हुआ। मेरा विश्वास है कि इसको पढ़कर सामान्य पाठक भी प्रश्नशास्त्र के शास्त्रीय एवं जटिल नियमों को आसानी से हृदयंगम कर सकेगा।

गुरुपूर्णिमा, वि० सम्वत् २०३३

शुकदेव चतुर्वेदी एम० ए०
ज्योतिषाचार्य
(सिद्धान्त एवं फलित)

विषय-सूची

मेषादि राशियों के स्वामी, ग्रहों की उच्च और नीच राशियाँ, परमोच्च और परमनीच, ग्रहों के मित्र और शत्रु, राहु का क्षेत्र, उच्च और नीच, केतु की स्थिति। १-२२

ग्रहों का स्वरूप; काल-प्रतिनिधित्व; ऊर्ध्वआदि दृष्टि; प्रकृति रस; धातु, मूल, जीव आदि संज्ञा; द्विपदादि संज्ञा; वर्ण; आकृति; रंग; जाति; धातु; निवास स्थान; पुरुष-स्त्री संज्ञा, आयु और शुभाशुभत्व। २३-४५

द्वादश भावों से विचारणीय विषय; इष्ट काल का निर्णय; लग्न एवं चन्द्र विचार; बल निर्णय; कार्य भाव विचार; कार्यसिद्धि के योगः ग्रहों की दृष्टि और दृष्टि द्वारा फल में तारतम्य; विनष्ट ग्रह का लक्षण और फल। ४५-७२

चार राज योग; उनके उदाहरण; चन्द्रमा की दृष्टि का महत्व अर्ध और पाद योग; लाभ विचार; राज्य; व्यापार एवं नौकरी में उन्नति; लग्नेश की स्थिति का फ़ल, मृत्यु और व्यय योग; धन लाभ के साथ अनर्थ; अफ़वाह का निर्णय। ७३-९०

गर्भ की कुशलता; गर्भपात योग; गर्भपात कितनी बार होगा? कन्या सन्तान होते ही मर जायेगी? जुड़वां बच्चों के जन्म का योग, पुत्र/कन्या जन्म विचार। ९०-९९

रखैल और विवाहिता स्त्री की प्राप्ति के योग; स्त्री सुख का विचार; दाम्पत्य प्रीति और वैर-योग; विषकन्या का निर्णय। ९९-१०५

भाव के अन्त में स्थित ग्रह का फल; विवाहादि के समय वर्षा का विचार; वर्षा के अन्य योग। १०५-१०९

मुकद्दमा, लड़ाई एवं अन्य विवादों में हार-जीत का निर्णय। १०९-११२

संकीर्णपद निर्णय, दीक्षा, राज्याभिषेक एवं प्रतिमा स्थापन; अचानक लाभ का योग; लग्नेश की स्थितिवश कार्यनाश और कार्यसिद्धि का योग; चन्द्रमा की स्थितिवश कष्ट और मृत्यु का योग; शुभ और अशुभ व्यय का निर्णय। ११२-११५

सकलागमाचार्य श्री नृसिंह दैवज्ञ विरचित

जातक सारदीप

सम्पादक व व्याख्याकार : डॉ० सुरेश चन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

त्रिस्कन्ध ज्योतिष के विशेषज्ञ श्री नृसिंह दैवज्ञ रचित यह ग्रन्थ पन्द्रहवीं सदी में दक्षिण भारत में लिखा गया था। मूल संस्कृत श्लोक सहित पहली बार हिन्दी भाषा में इसका व्याख्यात्मक संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

55 अध्यायों में सम्पूर्ण होराशास्त्र की कमबद्ध प्रस्तुति अनूठी है। छूटे गए पाठ को पूरा करके पुनः सम्पादनपूर्वक प्रस्तुति यह कृति शास्त्र की अमूल्य धरोहर है।

एक झांकी

(1) जन्मफल के अनूठे प्रकार !

(2) दक्षिण भारतीय व यवन मत का समन्वय !

(3) विस्तृत दशाफल एवं पंचांग फल !

(4) राजयोग व राजयोगभंग !

(5) ताजिक शास्त्र के अनूठे योगों का जातक में प्रयोग !

(6) स्वर शास्त्र से जन्मफल करने का अनोखा प्रकार !

(7) नष्टजातक, आयुर्दाय–वर्गफल, ग्रहों का दृष्टिफल आदि !

(8) अन्य भी बहुत कुछ उपयोगी व प्रामाणिक

मूल्य : 400 रुपये

श्री वैद्यनाथ विरचित

जातक पारिजात

(मंजुभाषिणी हिन्दी व्याख्या समेतः)

व्याख्याकार : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र ज्योतिषाचार्य

(1) अब तक छपे ग्रंथों में जो विषय छूट गये थे उनकी पूर्ति !

(2) 575 वर्ष पूर्व लिखी गई दक्षिण भारतीय रचना !

(3) मांगलिक योग : दो टूक संकेत !

(4) अनेक नूतन अवधारणाएँ व्यवहार मे सटीक !

(5) राजयोगों का अनुपम विस्तृत विचार, साथ ही यह भी जानें कि कब निष्फल होते है !

(6) फलित ज्योतिष में प्रथम कोटि के ग्रन्थों में गणना !

संस्कृत श्लोक व विस्तृत हिन्दी व्याख्या

उदाहरण कुंडलियों सहित

2 खण्डों में सम्पूर्ण

मूल्य : 400 रुपये

दीप्त प्रश्न विचार—प्रवासी की मृत्यु और बन्धन; मृत्यु योग; प्रवासी को कष्ट-योग। ११६-११८

यात्राविचार; विदेश यात्रा; यात्रा में सुख का योग; यात्रा में संकट; यात्रा से निवृत्ति; आगमन योग; यात्रा समाप्ति। ११८-१२२

मृत्यु योग—शीघ्र मृत्यु, रोगी की मृत्यु के योग, रोग-विचार, देवदोष एवं चिकित्सा-विचार। १२२-१२८

दुर्गभंग—किला टूटेगा या नहीं? शीघ्र किला टूटने का योग; किला न टूटने का योग। १२८-१३१

चोरी का निर्णय? चोरी का सामान मिलने का योग; १३१-१३८

तेजी-मन्दी का विचार। १३८-१४५

नौका, मृत्यु एवं बन्धन आदि, व्यतीत दिन का लाभालाभ; लग्नेश द्वारा मास फल; द्रेष्काण-फल—मृत्युयोग; लाभ योग; पुत्र प्राप्ति; लग्न में शुभ और पापवर्ग का फल; देवदोष विचार एवं शान्ति के उपाय; दिनचर्या-विचार—चन्द्रमा के द्वारा दिन का शुभाशुभत्व, शस्त्र से मृत्यु। पुत्र एवं कन्या का जन्म विचार; पति / पुत्र की प्रगति; गढ़े धन मिलने का योग; गढ़ा खजाना कब मिलेगा? भावों के कारक; एक समय में अनेक प्रश्नों का विचार। १४५-१६९

परिशिष्ट— १७१-१७९

१. प्रश्न कुण्डली कैसे बनावें?

२. इष्टकाल साधन, ग्रहस्पष्टीकरण एवं लग्न साधन।

३. उत्तर भारत के प्रमुख नगरों की अक्षांशादि-तालिका।

श्री मन्महागणधिपतये नमः

भुवन दीपक

सारस्वतं नमस्कृत्य महः सर्वतमोपहम्।
ग्रहभावप्रकाशेन ज्ञानमुन्मील्यते मया ॥१॥

अर्थात् समस्त अन्धकार (अज्ञान) को दूर करने वाले सरस्वती के तेज को नमस्कार कर, इस ग्रहभाव प्रकाश ग्रन्थ के द्वारा मैं—प्रश्नशास्त्र— के ज्ञान को स्पष्ट रूप से प्रकट करता हूँ।

गृहाधिपा उच्चनीचा अन्योन्यं मित्रशत्रवः।
राहोर्गृहोच्चनीचानि केतुर्यत्रावतिष्ठते ॥२॥
स्वरुपं ग्रहचक्रस्य वीक्ष्यं द्वादशवेश्मसु।
निर्णयोऽभीकालस्य यथालग्नं विचार्यते ॥३॥
ग्रहो विनष्टो यादृक् स्याद्राजयोग चतुष्टयम्।
लाभादीनां विचारश्च लग्नेशावस्थितेः फलम् ॥४॥
गर्भस्य क्षेममेतस्य गुर्विण्याः प्रसवो यदा।
अपत्ययुग्म प्रसवो ये मासा गर्भसंभवाः ॥५॥
धृता विवाहिता भार्या विधकन्या यथा भवेत्।
भावान्तगो ग्रहो यादृग्विवाहादि विचारणाः ॥६॥
वक्तव्यता विवादस्य संकीर्णपदनिर्णयः।
निश्चयो दीप्तपृच्छासु पथिकस्य गमागमौ ॥७॥
मृत्युयोगो दुर्गभङ्गश्चौर्यादिस्थानसप्तकम्।
क्रयणकार्यविज्ञानं नौमृत्युबन्धनत्रयम् ॥८॥

लाभादयो दिनेऽतीते फलं मासस्य लग्नपात्।
द्रेष्काणादेः फलं सर्वं दोषज्ञानं महाद्भुतम् ॥९॥
दिनचर्या नृपादीनां गर्भेऽस्मिन् किं भविष्यति।
षट्त्रिंशदस्मिन्द्वाराणि ग्रन्थे भुवनदीपके ॥१०॥

प्रश्नशास्त्र के सुविख्यात ग्रन्थ इस भुवन दीपक में १७० श्लोकों द्वारा विपयवस्तु का विवेचन किया गया है। विषय प्रतिपादन में पाठकों की सुविधा का ध्यान रखते हुए, समस्त विवेचनीय विपय ३६ द्वारों में विभक्त किया गया है। उक्त ९ श्लोकों में विषयानुक्रमिणका की रीति से ३६ द्वारों में निरूपित विषय वस्तु का वर्णन इस प्रकार है।

—भाष्यकार

अर्थात् प्रथम द्वार में मेषादि द्वादश राशियों के स्वामी; द्वितीय द्वार में ग्रहों की उच्च एवं नीच राशियाँ; तृतीय में ग्रहों के परस्पर मित्र एवं शत्रु; चतुर्थ में राहु की राशि, उच्च एवं नीच; तथा पंचम द्वार में केतु की स्थिति का निरूपण किया गया है; छठे द्वार में ग्रहों का स्वरूप; सप्तम में द्वादश भावों के विचारणीय विषय; अष्टम में इष्ट काल का निर्णय एवं नवम द्वार में लग्न का विचार किया गया है; दशम द्वार में विनष्ट ग्रह का विचार; एकादश में चार राजयोगों का निरूपण; द्वादश में लाभादि का विचार; एवं त्रयोदश द्वार में लग्नेश की स्थिति का फल है; चौदहवें द्वार में गर्भ की स्वस्थता, पन्द्रहवें में गर्भिणी का प्रसव काल (ज्ञान); सोलहवें में युगल (जुड़वाँ) बच्चों की उत्पत्ति; एवं सत्रहवें द्वार में गर्भ के मासों की संख्या का विचार है; अठारहवें द्वार में रखैल या विवाहिता स्त्री का विचार; उन्नीसवें में विषकन्या (कुलघातिनी) का निरूपण; बीसवें में

भाव के अन्त में स्थित ग्रह का फल; इक्कीसवें द्वार में विवा आदि का विचार दिया गया है; बाईसवें द्वार में विवाद (लड़ाई झगड़े में हार-जीत का कथन; तेईसवें में संकीर्णपद का निर्णय चौबीसवें में दीप्तप्रश्न (विदेश गये व्यक्ति का मरण-बन्धनादि विचार); पच्चीसवें द्वार में प्रवासी के आवागमन का निर्णय किया गया है; छब्बीसवें में मृत्युयोग; सत्ताइसवें में दुर्ग का टूटना, अट्ठाइसवें में चोरी आदि सात स्थान; उनतीसवें में क्रय विक्रय एवं तेजी-मन्दी का ज्ञान; तीसवें द्वार में नौका मृत्यु और बन्धन इन तीनों का विचार किया गया है; इक्तीसवें द्वार में गत दिन के लाभ का विचार; बत्तीसवें में लग्नेश से मासफल; तेंतीसवें में द्रेष्काणादि द्वारा फल; चौंतीसवें द्वार में महान् एवं अद्भुत दोषों का ज्ञान है; पैंतीसवें द्वार में नृपादि की दिनचर्या; और छत्तीसवें द्वार में गर्भ में (पुत्र या कन्या) का विचार किया गया है। इस प्रकार इस भुवनदीपक ग्रन्थ में छत्तीस द्वार हैं।

१. अथ गृहाधिपद्वारम्

मेषवृश्चिकयोर्भौमः शुक्रो वृष तुला भृतोः।
बुधः कन्यामिथुनयोः कर्कस्वामी तु चन्द्रमाः ॥११॥
स्यान्मीन धन्विनोर्जीवः शनिर्मकरकुम्भयोः।
सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कथितो गणकोत्तमैः ॥१२॥

अर्थात् मेष एवं वृश्चिक इन दो राशियों का स्वामी मंगल. वृष एवं तुला इन दोनों का शुक्र, मिथुन एवं कन्या का स्वामी बुध और कर्क का स्वामी चन्द्रमा है। धनु एवं मीन का स्वामी वृहस्पति, मकर एवं कुम्भ का स्वामी शनि और सिंह का स्वामी

सूर्य, ऐसा ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने कहा है।

भाष्य : अपने ग्रन्थ के प्रथम द्वार में आचार्य पद्मप्रभुसूरि ने राशियों के स्वामित्व का विवेचन किया है। क्रान्तिवृत्त या राशि-चक्र के बारहवें भाग को राशि कहते हैं। इस क्रान्तिवृत्त में अश्विनी से रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र स्थित हैं। अतः २¼ नक्षत्र से १ राशि बनती है। यथा—अश्विनी, भरणी एवं कृतिका के १ पाद से मेष राशि; कृतिका के शेष ३ पाद, रोहिणी एवं मृगशीर्ष के २ पादों से वृषभ राशि, मृगशीर्ष के शेष २ पाद, आर्द्रा एवं पुनर्वसु के प्रारंभिक ३ पादों से मिथुन राशि और पुनर्वसु का शेष १ पाद, पुष्य एवं आश्लेषा से कर्क राशि बनती है। इसी प्रकार २¼ नक्षत्र या ९ नक्षत्र पादों से आगे भी राशियों की कल्पना कर लेनी चाहिए।

ज्योतिषशास्त्र के प्रत्येक स्कन्ध में राशियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि सौर परिवार के सदस्य सभी ग्रह राशिचक्र या क्रान्तिवृत्त में परिभ्रमण करते हैं। अतः ग्रहों की गति, युति एवं स्थिति आदि का ज्ञान राशियों की सहायता से होता है। राशि चक्र में अपनी गति से चलते हुए ग्रहों का भिन्न-भिन्न राशियों में भिन्न प्रकार का प्रभाव होता है। उदाहरणार्थ—जब सूर्य वृषभ राशि में स्थित होता है, तब उसकी किरणें भारत उपमहाद्वीप के प्रदेशों पर सीधी पड़ती हैं। परिणामतः उन दिनों हमारे यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है। इसी प्रकार जब सूर्य मकर राशि में चला जाता है तब उसकी किरणें इस उपमहाद्वीप पर तिरछी पड़ती हैं। परिणामस्वरूप उन दिनों हमारे यहाँ सर्दी पड़ती है। सूर्य के स्थूलतम प्रभाव का यह अन्तर हम सदैव अनुभव करते हैं। इसी आधार पर फलित ज्योतिषशास्त्र में विभिन्न

राशियों में स्थित ग्रहों के फल में भेद की कल्पना की गयी है।

राशियों के स्वामित्व के प्रसग में मेषादि १२ राशियों और सूर्यादि ७ ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध का विचार किया जाता है। जो राशि या राशियाँ जिस ग्रह के विशेष प्रभाव को प्रकट करती हैं, उस राशि का स्वामी वह ग्रह माना गया है यथा— मेष एवं वृश्चिक राशियाँ मंगल के विशेष प्रभाव को दर्शाती हैं। अतः मंगल इनका स्वामी माना गया है। वृषभ एवं तुला राशियाँ शुक्र के प्रभाव को प्रकट करती हैं। इसलिए शुक्र इनका स्वामी कहा जाता है। इस प्रकार अन्य ग्रह एवं राशियों के बारे में जानना चाहिए।

मेषादि १२ राशियाँ और इनके स्वामी ७ ग्रह इस क्रम में सूर्य और चन्द्रमा एक-एक राशि के तथा मंगल आदि ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी हैं। कारण यह है सूर्य और चन्द्र कारकत्व[1] की दृष्टि से राजा होने के कारण प्रारम्भ में चक्रार्ध या ६ राशियों के स्वामी थे। सिंहादि ६ राशियों का स्वामी सूर्य और विलोम क्रम से कर्कादि ६ राशियों का स्वामी चन्द्र था। इन दोनों ने अपने-अपने चक्रार्ध की प्रथम राशि को अपना गृह बनाया तथा सूर्य ने अनुलोम क्रम से और चन्द्रमा ने विलोम क्रम से अग्रिम राशियाँ बुध, शुक्र, मंगल, गुरु और शनि इन ग्रहों को प्रदान कीं। फलस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा एक-एक राशि के और अन्य ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी हो गये।[2]

१. सूर्य और चन्द्रमा = राजा बुध = युवराज मंगल = सेनापति
गुरु एवं शुक्र = मन्त्री शनि = सेवक

२. देखिये : कण्ठीरवं विक्रमिणं विलोक्य

।। ग्रहाधिप चक्रम् ।।

२. अथ ग्रहोच्चनीचद्वारम्

रवेर्मेषतुले प्रोक्ते चन्द्रस्य वृषवृश्चिकौ।
भौमस्य मृगकर्कौ च कन्यामीनौ बुधस्य च ।।१३।।
जीवस्य कर्कमकरौ मीनकन्ये सितस्य च।
तुलामेषौ च मन्दस्य उच्चनीचे उदाहृते ।।१४।।

अर्थात् सूर्य की मेष एवं तुला राशियाँ; चन्द्रमा की वृषभ एवं वृश्चिक; मंगल की मकर एवं कर्क; बुध की कन्या एवं मीन; गुरु की कर्क एवं मकर; शुक्र की मीन एवं कन्या और शनि की तुला एवं मेष राशियाँ हैं। ये क्रमशः उच्च एवं नीच राशियाँ कही गई हैं।

सुदूरतम प्राचीनकाल में ज्योतिषशास्त्र के मर्मज्ञ महर्षियों ने उच्च एवं नीच की कल्पना की थी। सिद्धान्त स्कन्ध या हिन्दू गणित शास्त्र में उच्च एवं नीच का विस्तार से विवेचन किया गया है। यहाँ उच्च से तात्पर्य है ग्रह की कक्षा (भ्रमण मार्ग) का वह बिन्दू जो भू-केन्द्र से अधिकतम दूरी पर स्थित है, और नीच ग्रह कक्षा का वह स्थान है जो भू-केन्द्र के निकटतम है।

उच्च और नीच की इस कल्पना का फलितार्थ फलित के ग्रन्थों में इस रूप में लिया गया कि उच्च और नीच स्थित ग्रह भूमि से दूरतम और निकटतम होने के कारण भूमि एवं भौतिक पदार्थों पर विशेष प्रभाव डालते हैं। फलितशास्त्र के आचार्यों की मान्यता है कि जिन राशियों पर आकर ग्रह अपने उत्तम एवं अधम प्रभाव (फल) विशेष रूप से डालते (देते) हैं, उन्हें क्रमशः उच्च एवं नीच राशि कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस राशि में स्थित ग्रह अपने उत्तम फल को विशेष रूप से देता है, वह उसकी उच्च राशि है; तथा जिस राशि में स्थित होकर वह अपने अधम (निकृष्ट) फल को विशेष रूप से देता है, वह उसकी नीच राशि है। इसलिए उच्च राशि में स्थित ग्रह फल परम शुभ तथा नीच राशि में स्थित ग्रह का फलपरम अशुभ माना गया है।

सूर्य की मेष; चन्द्रमा की वृषभ; मंगल की मकर; बुध की कन्या, गुरु की कर्क; शुक्र की मीन एवं शनि की तुला उच्च राशि होती है।

उच्च से ७वीं राशि नीच राशि होती है। अतः सूर्य की तुला; चन्द्रमा की वृश्चिक; मंगल की; कर्क, बुध की मीन; गुरु की मकर; शुक्र की कन्या एवं शनि की मेष राशि नीच राशि मानी जाती है।

उच्च एवं नीच के विचार के प्रसंग में परमोच्च एवं परम-नीच का महत्त्वपूर्ण विवेचन भी प्रायः फलितशास्त्र के सभी मान्य ग्रन्थों में मिलता है, जो इस प्रकार है—सूर्य का मेष राशि के प्रारंभिक १० अंश तक परमोच्च है और तुला के १० अंश तक परमनीच है। चन्द्रमा का वृषभ के ३ अंश तक परमोच्च है तथा वृश्चिक के ३ अंश तक परमनीच है। मंगल का मकर के २८ अंश तक परमोच्च तथा कर्क के २८ अंश तक परमनीच है। बुध का कन्या के १५ अंश तक परमोच्च तथा मीन के १५ अंश तक परमनीच है। गुरु का कर्क के ५ अंश तक परमोच्च तथा मकर के ५ अंश तक परमनीच है। शुक्र का मीन के २७ अंश तक परमोच्च तथा कन्या के २७ अंश तक परमनीच है।[1] इसी प्रकार शनि का तुला के २० अंश तक परमोच्च एवं मेष के २० अंश तक परमनीच है। प्रत्येक ग्रह परमोच्च के पठित अंशों में स्थित होकर परम शुभ फल और परम नीच के पठित अंशों में स्थित होने पर परम अशुभ फल देता है।

१. सूर्यादितुङ्गर्क्षमजोक्षनक्रकन्याकुलीरान्त्यतुलालवैः स्युः।
दिग्भिर्गुणैरष्टयमैः शरेकैर्भूतैर्भसंख्यैर्नखसम्मितैश्च ॥

ताजिक नील कंठी संज्ञातन्त्रम्

॥ उच्च नीचादि बोधक चक्रम् ॥

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्चराशि	मेष	वृषभ	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला
नीच राशि	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष
परमोच्च एवं परमनीच अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०

३. अथ ग्रहणां शत्रु मित्र द्वारम्

रवीन्दुभौम गुरवो ज्ञशुक्रशनिराहवः।
स्वस्मिन्मित्राणि चत्वारि परस्मिञ्छत्रवः स्मृता ॥१५॥
राहुर्व्योः परं वैरं गुरुभार्गवयोरपि।
हिमांशुबुधयोः वैरं विवस्वन्मन्दयोरपि ॥१६॥
ज्ञशनी सुहृदौ मित्राण्यर्कचन्द्रकुजाः सदा।
पूज्यवर्गौ गुरुसितौ सैंहिकेयस्य कथ्यते ॥१७॥

अर्थात् सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं गुरु ये चारों ग्रह परस्पर मित्र हैं। बुध शुक्र, शनि एवं राहु ये चारों ग्रह भी आपस में एक-दूसरे के,मित्र हैं। राहु एवं सूर्य, वृहस्पति एवं, शुक्र, चन्द्रमा एवं बुध और सूर्य एवं शनि इन दो-दो ग्रहों में परस्पर महावैर है। बुध एवं शनि आपस में मित्र हैं तथा सूर्य, चन्द्र एवं मंगल सदैव एक दूसरे के मित्र हैं। गुरु और शुक्र परस्पर पूज्यवर्ग में हैं। (राहु के मित्रादि का कथन अग्रिम द्वार में निरूपित है)।

भाष्य : ज्योतिषशास्त्र की विभिन्न शाखाओं में ग्रह मैत्री का विस्तार से विचार किया गया है। जातकशास्त्र में नैसर्गिक एवं तात्कालिक भेद से पंचधा-मैत्री का निरूपण मिलता है। ताजिक शास्त्र में पंचधा-मैत्री के स्थान पर मित्र, सम एवं शत्रु का विचार किया जाता है। किन्तु प्रश्नशास्त्र में न तो पंचधा मैत्री का ही विचार करते हैं और न ही मित्र, सम एवं शत्रु का अपितु यहाँ इन दोनों रीतियों से भिन्न ग्रहों के मित्र एवं शत्रु का ही विचार किया जाता है।

ग्रह मैत्री के प्रसंग में मित्र ग्रह से तात्पर्य है—'वह ग्रह जो अपने प्रभाव से अन्य ग्रह या ग्रहों के मौलिक-फल में वृद्धि करता है, मित्र कहलाता है।' इसी प्रकार 'जो ग्रह अपने प्रभाव से दूसरे ग्रहों के फल में ह्रास या विरोध उत्पन्न करता है, वह शत्रु कहा जाता है।' उदाहरणार्थ—सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं गुरु आपस में एक-दूसरे के प्रभाव में वृद्धि करने के कारण परस्पर मित्र हैं। किन्तु ये ही ग्रह बुध, शुक्र, शनि एवं राहु के प्रभाव में ह्रास या विरोध उत्पन्न करने के कारण उनके शत्रु माने गये हैं। हमारे महर्षियों एवं मनीषी आचार्यों ने इसी तथ्य के आधार पर ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता का निर्धारण किया है। फलादेश में ग्रहों के इस मित्रता और शत्रुता जैसे पारस्परिक-सम्बन्ध को जानना परमावश्यक है।[1] क्योंकि यह सम्बन्ध ग्रह स्थिति तथा ग्रहयोग के

१. मित्रं तृतीयपञ्चमनवमैकादशगतोऽपि यो यस्य।
धनमृतिरिपुरिस्फेषु च समो ग्रहः स्यादिति ज्ञेयम् ॥
शत्रुस्तथैकतुर्ये जायास्थाने तथा दशमे।

(रोमक एवं आचार्य हिल्लाज के अनुसार)

प्रभाव (फल) में न्यूनता या अधिकता उत्पन्न करने वाला महत्त्वपूर्ण तथ्य है। बहुधा देखा गया है कि ग्रहमैत्री की उपेक्षा कर केवल ग्रहयोग के आधार पर फलादेश करने वाले कुछ विद्वान विपरीत फलादेश करते हैं। इसी सम्भावना को ध्यान में रखकर प्रश्नशास्त्र के सभी मानक-ग्रन्थों में ग्रहमैत्री का विस्तृत विवेचन किया गया है।

आचार्य पद्मप्रभुसूरि के अनुसार सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं गुरु इन ४ ग्रहों का एक वर्ग है तथा बुध, शुक्र, शनि एवं राहु इन ४ ग्रहों का दूसरा वर्ग है। प्रत्येक वर्ग के चारों ग्रह परस्पर मित्र हैं जैसे—सूर्य के चन्द्रमा, मंगल एवं गुरु मित्र हैं। चन्द्रमा के सूर्य, मंगल तथा गुरु मित्र हैं। मंगल के सूर्य, चन्द्रमा एवं गुरु मित्र हैं और गुरु के सूर्य, चन्द्र एवं मंगल मित्र हैं। इसी प्रकार दूसरे वर्ग के ग्रहों में भी मित्रता जाननी चाहिए। किन्तु एक वर्ग का ग्रह दूसरे वर्ग के प्रत्येक ग्रह का शत्रु है। उदाहरणार्थ—सूर्य के बुध, शुक्र, शनि एवं राहु शत्रु हैं। और इसी तरह चन्द्रमा, मंगल और गुरु के भी बुध, शुक्र, शनि एवं राहु शत्रु हैं।

उपर्युक्त दोनों वर्गों के ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता में तारतम्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य सूरि कहते हैं कि राहु और सूर्य, गुरु और शुक्र, चन्द्रमा और बुध तथा सूर्य और शनि इन २-२ ग्रहों में परस्पर परम शत्रुता है। किन्तु बुध और शनि ये दोनों तथा सूर्य, चन्द्र एवं मंगल ये तीनों ग्रह आपस में परम मित्र हैं। किन्तु गुरु और शुक्र एक-दूसरे के शत्रु होते हुए भी परस्पर पूज्य भाव रखते हैं।

॥ ग्रह मैत्रीचक्रम् ॥

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु
मित्र	चं. मं. गु.	सू. मं. गु.	सू. चं. गु.	शु. शं. रा.	सू. चं. मं.	बु. श. रा.	बु. शु. रा.	बु. शु. श.
शत्रु	बु. शु. श. रा.	बु. शु. श. रा.	बु. शु. शः रा.	सू. चं. मं. गु.	बु. शु. श. रा.	सू. चं. मं. गु.	सू. चं. मं. गु.	सू. चं. मं. गु.

४. अथ राहुगृहोच्चनीचद्वारम्

यद् बुधस्य ग्रहस्योच्चं राहोस्तद् गृहमुच्यते ।
यद् बुधस्य गृहं राहोस्तदुच्चं ब्रुवते बुधाः ॥१८॥
कन्या राहुगृहं प्रोक्तं राहूच्चं मिथुनं स्मृतम् ।
राहुर्नीचं धनुर्वर्णादिकं शनिवदस्य च ॥१९॥
राहुर्दुष्टः परं किंचिदुदास्ते मित्रसद्मनि ।
कन्यामिथुनयोः किंचिद्विधत्ते शुभमप्ययम् ॥२०॥

अर्थात् जो बुध की उच्च (कन्या) राशि है, वह राहु का गृह (स्वराशि) है, तथा जो बुध का गृह (मिथुन) है, वह राहु का उच्च है, ऐसा विद्वान कहते हैं। (अतः) राहु का गृह कन्या है और उच्च मिथुन कहा गया है। धनु राशि राहु का नीच है

तथा राहु का स्वरूप आदि शनि के समान है। (यद्यपि) राहु दुष्ट (पाप) ग्रह है, किन्तु मित्र (बुध और शनि) की राशि में उदासीन रहता है तथा कन्या और मिथुन राशियों में यह कुछ शुभ फल भी देता है।

भाष्य : यद्यपि राहु और केतु का कोई विम्ब आकाश मे दिखलाई नहीं देता। ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा की कक्षाओं के सम्पात विन्दु होने के कारण तमोग्रह या छायाग्रह कहे गये हैं। किन्तु ये दोनों ग्रहगति एवं ग्रहणादि में महत्त्वपूर्ण कारण हैं। अतः फलित शास्त्र के आचार्यों ने इन्हें स्वतंत्र ग्रह के रूप में स्वीकार किया है। स्वभावतः तमोमय स्वरूप होने के कारण राहु पाप ग्रह है। तथा शनि के समान इनका वर्ण काला माना गया है।

श्लोक १८ में सामान्यतया यह कहा गया है कि जो बुध की उच्च राशि है, वह राहु की स्वराशि मानी गई है तथा जो बुध की स्वराशि है वह राहु की उच्च राशि कही गयी है। ग्रन्थकार श्लोक १९ में इसको स्वयं स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कन्या राहु की स्वराशि, मिथुन उच्च एवं धनु नीच है।

राहु स्वभावतः पापग्रह है।[1] किन्तु वह अपने मित्र बुध, शुक्र और शनि की राशियों (मिथुन, कन्या, वृष, तुला, मकर एवं कुम्भ) में पाप फल न देकर उदासीन रहता है। किन्तु मिथुन और कन्या में स्थित वह अपने नैसर्गिक पाप प्रभाव को छोड़कर कुछ शुभ फल देता है। कारण यह है कि राहु के ३ मित्र ग्रह हैं

१. (अ) भौममन्दार्क भोगीन्द्रा प्रकृत्या दुःखदा नृणाम भुवनदीपक श्लोक ४२
(आ) क्षीणेन्द्वर्क कुजाहिकेतु रविजाः पापाः सपापश्च वित्।

बुध, शुक्र एवं शनि। शनि प्रकृति से पाप ग्रह है। अतः उसकी राशि में स्थित राहु शुभ फल नहीं दे सकता। अपितु मित्र की राशि में स्थित होने के कारण वह पाप फल न देता हुआ उदासीन-सा रहता है। किन्तु बुध राहु का मित्र होने के साथ शुभ ग्रह है। अतः जैसे सज्जन शीलवान एवं सदाचारी मित्र के सम्पर्क मात्र से दुष्ट व्यक्ति अपनी स्वाभाविक दुष्टता छोड़कर सन्मार्ग पर चलता है। ठीक उसी प्रकार राहु भी बुध की राशि मिथुन एवं कन्या के सम्पर्क में आकर अपने पाप प्रभाव को छोड़कर कुछ शुभ फल देने लगता है। शुक्र की राशियों में राहु का ऐसा ही फल अनुक्त होते हुए भी मानना चाहिए।

५. अथ केतुस्थितिद्वारम्

राहुच्छाया स्मृतः केतुर्यत्र राशौ भवेदयम्।
तस्मात्सप्तमके केतुः राहुः स्याद्यत्र चांशके॥२१॥
तस्मादंशे सप्तमे स्यात्केतोरंशो नवांशकः।
त्रिंशांशो भागशब्देन पारम्पर्यमिदं गुरोः॥२२॥

अर्थात केतु राहु की छाया कहा गया है। अतः जिस राशि पर राहु स्थित होता है उससे ७वीं राशि में केतु रहता है। जितने अंश पर राहु होता है, उससे ७वीं राशि पर उतने ही अंश पर केतु रहता है। (फलितशास्त्र में सामान्यतया) अंश शब्द से नवमांश और भाग शब्द से त्रिशांश का ग्रहण होता है, ऐसा गुरुजनों की परम्परा से ज्ञात हुआ है।

भाष्य : राहु और केतु, सूर्य और चन्द्रमा की कक्षाओं के सम्पात बिन्दु हैं, जिनको गणित-ज्योतिष (Astronomy) में चन्द्रपात कहते हैं। इन दोनों का कोई बिम्ब न होने के कारण

इन्हें छाया-ग्रह कहा गया है। रेखागणित का मान्य नियम है कि दो वृत्तों का स्पर्श एक विन्दु पर किन्तु सम्पात दो स्थानों पर होता है और इन दोनों स्थानों का अन्तर १८० अंश होता है। ६ राशियों का मान भी १८० अंश के तुल्य होता है। अतः राहु जिस राशि के जितने अंश पर स्थित है, उससे ७वीं राशि के उतने ही अंश पर केतु की स्थिति स्वयं सिद्ध हो जाती है।

राहु एवं केतु परस्पर ७वीं राशि में स्थित विलोम (वक्री) गति से चलते हैं। इनकी दैनिक गति ३ कला ११ विकला है। ये एक राशि का उपभोग १ वर्ष ६ मास में तथा सम्पूर्ण राशि चक्र का भ्रमण १८ वर्ष में करते हैं, जिसे भगण भोग काल कहा जाता है। इस प्रकार वक्री गति से चलते हुए ये दोनों जब सूर्य एवं चन्द्र के साथ योग करते हैं, तब सूर्य एवं चन्द्रग्रहण पड़ता है। विभिन्न राशियों में इनकी स्थिति का फल ज्योतिषशास्त्र में विस्तार से कहा गया है।

अंश और भाग शब्द क्रमशः नवमांश एवं त्रिशांश के पर्याय-वाची शब्द हैं।

६. अथ ग्रहस्वरूपादिद्वारम्

भार्गवेन्दु जलचरौ ज्ञजीवौ ग्रामचारिणौ।
राहुक्षितिजमन्दार्काः ब्रुवतेऽरण्यचारिणः ॥२३॥

अर्थात् चन्द्रमा और शुक्र जलचर हैं। बुध और गुरु ग्राम-चारी हैं तथा राहु, मंगल, शनि और सूर्य वनचर हैं ऐसा विद्वानों का कथन है।

भाष्य : सूर्यादि ग्रहों को यहाँ जलचर, ग्रामचर और वन-चर—इन तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। प्रायः ऐसा ही

वर्गीकरण जातक ग्रन्थों में भी किया गया है। सूर्यादि आठ ग्रहों में से दो जलचर, दो ग्रामचर और शेष चार वनचर माने गए हैं।

चन्द्रमा एवं शुक्र ये दो ग्रह जलचर हैं। इनका सम्बन्ध तालाब, कुँआ, वावड़ी, सरोवर, बाँध, नदी, नहर, समुद्र, झरना एवं अन्य जलीय प्रदेशों से है। बुध एवं गुरु ये दोनों ग्रामचर हैं। इनका सम्बन्ध ग्राम, नगर, जनपद, पार्क, उद्यान, मनोरंजनस्थल, नाट्यगृह, कलागृह, गोष्ठीभवन एवं सभासदन आदि से है। शेष सूर्य, मंगल, शनि एवं राहु ये चारों ग्रह वनचर हैं। इनका सम्बन्ध वन, निर्जन प्रदेश, पर्वत, खनिजक्षेत्र एवं खनिज वस्तुओं से है।

इसका प्रयोजन यह है कि यदि प्रश्न के समय चन्द्र या शुक्र बलवान् होकर लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो, तो प्रश्नकर्ता का सम्बन्ध जल, जलीय (तरल) पदार्थ या जलप्रदेश से होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के बारे में जानना चाहिए।

किन्तु शुक्र के बारे में एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि यदि प्रश्न जीव से सम्बन्धित हो, और उस स्थिति में शुक्र का लग्न या लग्नेशादि से सम्बन्ध हो, तो प्रश्न स्त्री या विवाह से सम्बन्धित होता है।

प्रभातमिन्दुजगुरु मध्याह्नं रविभूमिजौ।
अपराह्नं भार्गवेन्दू सन्ध्यां मन्दभुजङ्गमौ ॥२४॥

अर्थात बुध और गुरु प्रातःकाल, सूर्य और मंगल मध्याह्न, शुक्र और चन्द्रमा अपराह्न एवं शनि और राहु सायंकाल के प्रतिनिधि अथवा कारक हैं।

भाष्य : प्रश्नकुण्डली के द्वारा कालज्ञान के लिए आचार्य ने

यहाँ ग्रहों के उक्त प्रतिनिधित्व या कारकत्व का निरूपण किया है। प्रश्न से सम्बन्धित कोई भी कार्य कब होगा ? यह निर्णय करने के लिए ग्रहों के इस प्रतिनिधित्व का ज्ञान होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ—लाभ किस समय होगा ? विवाद या मुकदमे का निर्णय किस समय होगा ? कोई भी वस्तु कब खोई अथवा कब मिलेगी ? प्रसव या वृष्टि कब होगी ? इत्यादि अनेक प्रश्नों के प्रसंग में इससे काल निर्णय करने में सहायता मिलती है।

बुध और गुरु प्रातःकाल के प्रतिनिधि हैं। अतः यदि प्रश्नकाल में बुध या गुरु बलवान् होकर लग्न में स्थित हों, या लग्न को देखें अथवा कार्येश से युक्त दृष्ट हों, तो प्रश्न से सम्बन्धित कार्य प्रातःकाल में होगा। यदि बलवान् सूर्य और मंगल का पूर्वोक्त रीति से लग्न अथवा कार्येश से सम्बन्ध हो, तो कार्य दोपहर के समय होगा। इसी प्रकार शुक्र और चन्द्रमा के द्वारा अपराह्न तथा शनि और राहु के द्वारा सायंकाल जानना चाहिए। इस रीति से तात्कालिक प्रश्नों के कार्यनिर्णय में काफी सहायता मिलती है। वर्षाकाल में वृष्टि का ज्ञान, आसन्नप्रसवा का प्रसवकालनिर्णय, दैनिक तेजी-मन्दी एवं अन्य दैनन्दिन कार्यों में उक्त रीति से कालज्ञान सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

तिर्यग्दृशौ बुधसितौ भौमार्कौ व्योमदर्शिनौ।
जीवेन्दू समदृष्टी च शनिराहू स्वधोदृशौ ॥२५॥

अर्थात् बुध और शुक्र की तिरछी दृष्टि है। मंगल और सूर्य की ऊर्ध्वदृष्टि है। गुरु और चन्द्र की समदृष्टि (सन्मुख-दृष्टि) तथा शनि और राहु की अधोदृष्टि है।

भाष्य : नष्ट अथवा अज्ञात वस्तु किस स्थान में है ?—

यह जानने के लिए आचार्य ने ग्रहों की तीर्यंग् आदि दृष्टि का विवेचन किया है। नष्ट पदार्थ की प्राप्ति के योगों से उसके लाभालाभ का विचार कर लेना चाहिए। यदि योगकारक ग्रहों पर बुध अथवा शुक्र का प्रभाव हो तो नष्ट वस्तु दीवार के कोने में स्थित होती है। यदि योगकारक ग्रह मंगल अथवा सूर्य हों, या इन दोनों में से किसी एक से प्रभावित हों, तो वह वस्तु किसी ऊँचे स्थान (आला, छत, चौबारा या टाँड आदि) पर रखी होती है। यदि योगकारक ग्रह गुरु या चन्द्र हों अथवा इनसे प्रभावित हों, तो वह पदार्थ समतल भूमि में (किसी कमरा

॥ तिर्यगादिदृष्टिफलचक्रम् ॥

ग्रह	दृष्टि	स्थान
बुध, शुक्र	तिर्यग्दृष्टि	दीवार, कोना, आदि
मंगल, सूर्य	ऊर्ध्वदृष्टि	आला, छत, चौबारा एवं भूमि के ऊपर के अन्य स्थान
गुरु, चन्द्र	समदृष्टि	कमरा, बराण्डा, आँगन आदि समतल स्थान
शनि, राहु	अधोदृष्टि	तहखाना, सुरंग एवं भूमि के नीचे के स्थान

आँगन या चौरस स्थान में) होता है। और इसी प्रकार शनि अथवा राहु का प्रभाव होने पर वह वस्तु भूमि में गड़ी होती है।

प्रश्नकालीन लग्न पर ग्रहों के प्रभाव द्वारा अथवा प्रश्नकाल में बलवान् ग्रह के द्वारा भी उक्त निर्णय किया जा सकता है।

पित्तं प्रभाकरक्ष्माजौ श्लेष्मा भार्गवशीतगू।
ज्ञगुरु समधातू च पवनौ राहुमन्दगौ ॥२६॥

अर्थात् सूर्य और मंगल पित्तप्रकृति, शुक्र और चन्द्र श्लेष्मा (कफ) प्रकृति, बुध और गुरु सम (वात, पित एवं कफ के समानता) प्रकृति तथा शनि और राहु वायु प्रकृति ग्रह हैं।

आयुर्वेदशास्त्र में वात, पित्त एवं कफ इन तीन धातुओं के प्रकोप से रोगोत्पत्ति का सिद्धान्त माना गया है। शरीर में उत्पन्न होने वाले समस्त विकारों का हेतु इन्हीं धातुओं का प्रकोप है। अतः ग्रहों के प्रभाव से रोग निदान करने के लिए ग्रहों की इस प्रकृति का ज्ञान आवश्यक है।

रोग से सम्बन्धित प्रश्न में प्रश्नकाल में जो रोगकारक ग्रह हो, उसकी धातु के प्रकोप से रोग की उत्पत्ति होती है। यदि रोगकारक ग्रह एकाधिक हों, अथवा वह अनेक ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो, तो उन सबमें बलवान ग्रह की धातु के कोप से रोगोत्पत्ति माननी चाहिए तथा ग्रहों के बलाबल के द्वारा रोग के साध्यात्व का निर्णय करना चाहिए। उदाहरणार्थ—यदि प्रश्नकुण्डली में सूर्य या मंगल रोगकारक ग्रह हों तो पित्त धातु के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले रोग—जैसे ज्वर, अतिसार, उदर-विकार एवं अन्य पित्त विकार कहने चाहिए। यदि प्रश्नकुण्डली में शुक्र अथवा चन्द्रमा रोगकारक हों तो कफ्ज रोग—जैसे सर्दी

जुकाम, खाँसी, दमा, निमोनिया आदि रोग होते हैं। बुध और गुरु के रोगकारक ग्रह होने पर त्रिदोषजन्य रोग होते हैं तथा राहु और शनि के रोगकारक होने पर गैस, गठिया लकवा एवं जोड़ों में दर्द जैसे वायु रोग होते हैं।

इस प्रकार रोग का निर्णय कर रोगकारक ग्रह के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए मन्त्र, औषधि, दान एवं स्नान आदि उपायों से ग्रह की शान्ति होने पर रोग दूर हो जाता है।

कुजार्कौ कटुकौ जीवो मधुर स्तुवरो बुधः।
क्षाराम्लौ चन्द्रभृगजौ तीक्ष्णौ सर्पार्कनन्दनौ ॥२७॥

अर्थात् मंगल और सूर्य कड़वे रस के, गुरु मधुर रस का, बुध कषाय रस का, चन्द्रमा नमकीन का, शुक्र खट्टे रस का, शनि और राहु तीक्ष्ण रस के प्रेमी या प्रतिनिधि हैं।

भाष्य : व्यक्ति किस रस का प्रेमी है ? उसकी खानपान में कैसी अभिरुचि है ? या गर्भिणी की दोहद-इच्छा क्या है ? इत्यादि का निश्चय करने के लिए ग्रहों के रसप्रतिनिधित्व का ज्ञान आवश्यक है। यहाँ आचार्य ने सूर्य आदि ८ ग्रहों को ६ रसों का प्रतिनिधि माना है।

सामान्यतया मधुर, अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), कुटुक (कड़वा), कषाय (कसैल।), एवं तीक्ष्ण छः रस होते हैं। सूर्य और मंगल दो ग्रह कड़वे रस के, शनि और राहु ये दो ग्रह तीक्ष्ण रस तथा शेष चार ग्रह अन्य चार रसों के प्रतिनिधि माने गये हैं। इस प्रकार चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्र ये चारों ग्रह यथा क्रम से नमकीन, कसैला, मधुर एवं खट्टे रस के प्रतिनिधि हैं

॥ ग्रहशान्त्यर्थं मन्त्रादयः ॥

ग्रह	मन्त्र	रत्न	दान	स्नान
सूर्य	ॐ सूर्याय नमः	माणिक्य	गेहूँ, धेनु, लाल कपड़ा गुड़, स्वर्ण, तांवा, रक्तपुष्प	कूट, खिल्ली, मालकंगनी, लाजवन्ती, जौ, सरसों, देवदान, हल्दी एवं सर्वौषि घी युक्त जल से स्नान करने से सब ग्रहों की पीड़ा शान्त होती है।
चन्द्र	ॐ चं चद्रमसेनमः	मोती	चावल, कपूर, श्वेत वस्त्र, वृषभ, चांदी, घी, चीनी	
मंगल	ॐ अं अंगारकाय नमः	मूंगा	गेहूँ, मसूर, गुड़, सुवर्ण, लाल कपड़ा, ताँबा, कनेर पुष्प	
बुध	ॐ बुं बुधाय नमः	पन्ना	मूंग, हरा कपड़ा, कांसा, कस्तूरी, घी, शाक	
गुरु	ॐ वृं बृहस्पतये नमः	पुखराज	हल्दी, चना, अश्व, पीला कपड़ा, स्वर्ण, पीला पुष्प	
शुक्र	ॐ शुं शुक्राय नमः	हीरा	चावल, धेनु, चांदी अनेक रंग का कपड़ा, सुगन्धित पुष्प	
शनि	ॐ शं शनैश्चराय नमः	नीलम	उड़द, तिल, तेल, भैंस, लोहा, काला कपड़ा	
राहु	ॐ रां राहवे नमः	गोमेद	गेहूं, नीला वस्त्र, कंबल, तिल, तेल, अभ्रक	
केतु	ॐ कें केतवे नमः	लहसुनिया	सप्तधान्य, तिल, कंबल, शस्त्र, काला कपड़ा,	

आचार्य नीलकण्ठ का भी यही मत है।[1]

प्रश्नकुण्डली में जो ग्रह बलवान् होकर लग्न से सम्बन्ध रखता हो, व्यक्ति की खानपान में उस ग्रह के रस में स्थायी अभिरुचि होती है तथा चन्द्रमा से सम्वन्ध रखने वाले ग्रह के रस में तात्कालिक इच्छा होती है। उदाहरणार्थ—प्रश्नकाल में वलवान् गुरु लग्न में स्थित है तथा चन्द्रमा बलवान शुक्र से दृष्टि है। इस स्थिति में व्यक्ति स्वभाव से मधुर पदार्थ मिष्ठान आदि) का प्रेमी है किन्तु उसकी तात्कालिक इच्छा कुछ खट्टे पदार्थों के खाने की है—ऐसा कहना चाहिए।

मन्देन्दूरगभौमाः स्युर्धातु सवितृ भार्गवौ।
मूलं जीवश्च सौम्यश्च जीवं प्राहुर्महाधियः ॥२८॥

अर्थात् शनि, चन्द्रमा, राहु एवं मंगल धातु संज्ञक हैं। सूर्य और शुक्र मूल संज्ञक है तथा बुध और गुरु जीव संज्ञक हैं ऐसा मनीषी आचार्यों ने कहा है।

भाष्य : अपहृत वस्तु, नष्ट वस्तु, मुष्टिका, (मुट्ठी) में रखी वस्तु या मूक प्रश्न में जिस वस्तु की चिन्ता है, उस वस्तु की जानकारी के लिए आचार्यों ने सर्वप्रथम धातु, मूल एवं जीव इन तीन वर्गों में समस्त वस्तुओं का वर्गीकरण किया है।

धातु वर्ग में भूगर्भ से निकलने वाले समस्त पदार्थ, जैसे सोंना, चाँदी, पीतल, ताँबा, काँसा सीसा, कोयला, पत्थर मिट्टी एवं अन्य खनिज पदार्थ आते हैं। धातु भी दो प्रकार की होती

१. कटुको लवणस्तिक्तो मिश्रितो मधुरो रसः।
अम्लः कषाय कथिता स्यादीनां रसाः बुधैः॥
ताजिक नीलकण्ठी प्रश्नतन्त्र श्लोक २६

है—धाम्य और अधाम्य। धाम्य धातुओं में सुवर्ण आदि तैजस (चमकीले पदार्थ जैसे सोना-चाँदी आदि सप्त धातु एवं विभिन्न प्रकार के रत्न) तथा अधाम्य धातुओं में मृत्तिकादि अतैजस (चमकीलापन रहित) जैसे मिट्टी, पत्थर, कोयला एवं विभिन्न खनिज पदार्थ माने गये हैं। मूलवर्ग में तृण आदि से लेकर वृक्ष पर्यन्त विभिन्न पदार्थ जैसे तृण, गुल्म, लता, वल्ली, काष्ठ, औषधि, धान्य एवं अन्य उभ्दिज पदार्थ स्वीकार किये गये हैं। मूलवर्ग भी दो प्रकार का होता है—जलज और स्थलज। जल में उत्पन्न होने वाले को जलज और भूमि में उत्पन्न होने वाले को स्थलज कहते हैं। जीव वर्ग में अण्डज (अण्डा से उत्पन्न पक्षी आदि), श्वेदज (कीट), जरायुज एवं पिण्डज आदि समस्त जीव आते हैं। ये जीव तीन प्रकार के होते हैं १. द्विपद, २. चतुस्पद एवं ३. सरीसृप। इनका विस्तार से विवेचन अग्रिम श्लोकों में किया गया है। प्रश्नशास्त्र के सभी मानक ग्रन्थों में धातु, मूल एवं जीवादि ऐसा ही वर्गीकरण मिलता है।

चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं राहु धातु संज्ञक ग्रह हैं। यदि इन ग्रहों का लग्न से सम्बन्ध हो, तो धातु सम्बन्धी प्रश्न होता है। धाम्य एवं अधाम्य धातु के निर्णय का प्रकार यह है—यदि उक्त ग्रह पाप ग्रह के नवमांश में हों, तो धाम्य धातु और यदि शुभ ग्रह के नवमांश में हों, तो अधाम्य धातु जानना चाहिए। आगे ३७ वें श्लोक में आचार्य ने इसका विस्तार से विचार किया है।

सूर्य और शुक्र मूलसंज्ञक हैं। यदि इनका सम्बन्ध लग्न से हो, तो मूल सम्बन्धी प्रश्न होता है। जलज एवं स्थलज का ज्ञान

इस प्रकार करते हैं—यदि उक्त ग्रह जलचर-राशि[1] के नवमांश में हों, तो जलज और यदि स्थलचर-राशि[2] के नवमांश में हों, तो स्थलज मूल कहना चाहिए। बुध और गुरु जीवसंज्ञक हैं। यदि प्रश्नकाल में इन दोनों में से किसी एक का लग्न से सम्बन्ध हो, तो प्रश्न जीव से सम्बन्धित होता है। अग्रिम श्लोक में जीव के पूर्वोक्त तीन प्रकारों—१. द्विपद, २. चतुस्पद एवं ३. सरीसृप का विचार किया जा रहा है।

द्विपदौ भार्गवगुरु भौमार्कौ च चतुस्पदौ।
पक्षिणौ बुधसौरी च चन्द्रराहू सरीसृपौ ॥२६॥

अर्थात शुक्र एवं गुरु द्विपद संज्ञक हैं; मंगल और सूर्य चतुष्पद संज्ञक हैं; बुध एवं शनि पक्षी संज्ञक है तथा चन्द्रमा एवं राहु सरीसृप (रेंगने वाले) संज्ञक हैं।

भाष्य : जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—१. द्विपद, २. चतुस्पद एवं ३. सरीसृप। द्विपद का अर्थ है, दो पैर वाले। इस वर्ग के अन्तर्गत मनुष्य, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर एवं देवता आदि सम्मिलित हैं। चतुष्पद का अर्थ है चार पैर वाले। इस वर्ग में गाय, बैल, अश्व, हाथी, भेड़, बकरी, सिंह ऊंट, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, गिलहरी आदि अनेक पशु शामिल हैं। सरीसृप वे जीव हैं, जो रेंगकर चलते हैं। सर्प, विच्छु, छिपकली, काँतर आदि विभिन्न कीट इस वर्ग में आते हैं।

पूर्वोक्त रीति से प्रश्न जीव से सम्बन्धित है, यह निश्चय हो जाने पर, जीव द्विपद, चतुष्पद या सरीसृप है यह विचार यहाँ

१. जलचर राशियाँ : कर्क, वृश्चिक, मकर, कुम्भ और मीन।
२. स्थलचर राशियाँ : मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, तुला और धनु।

किया गया है। गुरु और शुक्र द्विपद संज्ञक हैं। प्रश्नकाल में यदि ये बलवान् होकर लग्न में बैठे हों या देखते हों, तो जीव द्विपद होता है। इन पर सत्त्व, रज तथा तमोगुण वाले ग्रहों का प्रभाव होने पर देवता, मनुष्य और राक्षस का निर्णय करना चाहिए।

मंगल और सूर्य चतुष्पद संज्ञक है। प्रश्नकुण्डली में यदि इन दोनों का लग्न से सम्बन्ध हो तो जीव चतुष्पद होता है। साथ ही इन ग्रहों पर अन्य पाप ग्रहों का प्रभाव होने से हिंसक पशु और शुभ ग्रहों का प्रभाव होने पर पालतू पशु जानना चाहिए। बुध और शनि पक्षी संज्ञक है। यदि प्रश्न लग्न से इनका सम्वन्ध हो तो जीव पक्षी होता है। इनकी जलचर और स्थलचर राशियों में स्थिति के अनुसार जलचर एवं स्थलचर पक्षी कहना चाहिए। चन्द्र और राहु सरीसृप संज्ञक हैं। इनका लग्न से सम्बन्ध होने पर जीव सरीसृप होता है। इन पर पाप ग्रहों के प्रभाववश विषैले कीट और शुभ ग्रहों के प्रभाववश विषरहित कीट का निर्णय करना चाहिए।

विप्रौ शुक्रगुरु क्षत्रौ कुजार्कौ शुद्र इन्दुजः।
इन्दुर्वैश्यः स्मृतौ म्लेच्छौ सैंहिकेयशनैश्चरौ ॥३०॥

अर्थात् शुक्र, और गुरु ब्राह्मण, मंगल और सूर्य क्षत्रिय, बुध शूद्र, चन्द्रमा वैश्य तथा राहु और शनि म्लेच्छ कहे गए हैं।

भाष्य : पूर्वोक्त रीति से जीव द्विपद एवं मनुष्य है, यह निश्चित हो जाने पर, वह किस वर्ण या जाति का है, यह निर्णय यहाँ करेंगे। ब्राह्मणादि चार वर्णों में मलेच्छ (चाण्डाल)। को सम्मिलित कर यहाँ पाँच जातियाँ मानी गयी हैं।

ज्योतिषशास्त्र जन्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था का पक्ष-

पाती नहीं है। क्योंकि मेष, सिंह, धनु राशियों का क्षत्रिय वर्ण वृष, कन्या एवं मकर का वैश्य वर्ण; मिथुन, तुला एवं कुम्भ का शूद्र वर्ण और कर्क, वृश्चिक एवं मीन का विप्रवर्ण माना गया है। तात्पर्य यह है कि यहाँ वर्ण व्यवस्था राशियों, उनके गुण-धर्म एवं कर्म के अनुसार निश्चित की गयी है। इस सन्दर्भ में यहाँ ब्राह्मण का अर्थ है वह व्यक्ति जो त्याग, तपस्या, दूसरों की भलाई में तत्पर हो, ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त हो तथा जिसका जीवन आदर्श हो। अतः विभिन्न विषयों के मर्मज्ञ विद्वान, वैज्ञानिक, अन्वेषक, शोधकर्ता, बुद्धिजीवी एवं समाजसेवी आदि सभी व्यक्ति इस वर्ग में आते हैं। इसी प्रकार जो लोग देश में कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने में तत्पर हैं, देश की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा में लगे हुए हैं वे सब क्षत्रिय वर्ण के हैं। देश की अर्थव्यवस्था में योगदान देने वाले, खेती एवं अन्य उत्पादनों में संलग्न, तथा व्यापार में लगे हुए व्यक्ति वैश्य वर्ण के हैं। कायिक, वाचिक एवं मानसिक तीनों प्रकारों से देश एवं समाज की सेवा में संलग्न व्यक्ति शूद्र वर्ण के हैं। किन्तु जो लोग देश और समाज में अव्यवस्था फैलाने वाले हैं, समाज-विरोधी गतिविधियों में संलग्न हैं तथा येन-केन प्रकारेण स्वार्थसिद्धि में तत्पर हैं, वे मलेच्छ या चाण्डाल जाति के हैं। इस प्रकार व्यक्ति के विभिन्न क्रिया-कलापों एवं राशियों के आधार पर उसके वर्ण का निर्धारण कर लेना चाहिए।

गुरु और शुक्र का ब्राह्मण वर्ण है। सूर्य और मंगल क्षत्रिय वर्ण है। बुध शूद्र, चन्द्रमा वैश्य और शनि एवं राहु म्लेच्छ (चण्डालादि) जाति के प्रतिनिधि हैं। अतः प्रश्न लग्न से जिस ग्रह का सम्बन्ध हो, वह ग्रह जिस वर्ण या जाति का प्रतिनिधि

हो, उसके अनुसार मनुष्य के वर्ण या जाति निर्णय सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

स्थूल इन्दुः सितः षण्ढश्चतुरस्रौ कुजोष्णगू।
वर्तुलौ सौम्यधिष्णौ दीर्घौं शनिभुजङ्गमौ ॥३१॥

अर्थात् चन्द्रमा स्थूल (मोटा) शुक्र षष्ठ (दुर्बल) सूर्य एवं मंगल चतुरस (वर्गाकार या समान आकार), गुरु एवं बुध वर्तुल (गोलाकार) तथा शनि एवं राहु दीर्घाकार (लम्बे) आकार के हैं।

भाष्य : मूक प्रश्न एवं नष्ट या अपहृत पदार्थ की आकृति को जानने के लिए यहाँ ग्रहों के आकार का निरूपण किया गया है। प्रश्न लग्न पर ग्रहों के प्रभाव तथा उनकी आकृति की जानकारी की सहायता से चोरी गई वस्तु का परिमाण और उसकी आकृति का निश्चय किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि प्रश्नकुण्डली में लग्न से चन्द्रमा का सम्बन्ध हो, तो व्यक्ति या पदार्थ स्थूल (मोटा) होता है। यहाँ शुक्र को षष्ठ कहा गया है। जिसका व्यापक अर्थ निर्वीर्य या निर्बल ग्रहण किया गया है। यद्यपि शुक्र का लग्न से सम्बन्ध होने पर व्यक्ति दुर्बल होता है किन्तु उसका व्यक्तित्व आकर्षक और आकृति कमनीय होती है भट्टोत्पल का भी यही मत है। इसी प्रकार लग्न पर ग्रहों के प्रभाववश व्यक्ति और पदार्थों की आकृति का विचार किया जा सकता है।

रक्तवर्णः कुजः प्रोक्तो धिषणः कनकद्युतिः।
शुकपिच्छसमः सौम्यो गौरकान्तिरथोष्णगुः ॥३२॥

मन्दारार्कस्य पुष्पेण समद्युतिरनुष्णगुः ।
कविरत्यन्त्य धवलः फणी कृष्णः शनिस्तथा ।।३३।।

अर्थात् मंगल का लाल वर्ण, गुरु का सुवर्ण के समान पीत, बुध के तोते के पंख के सदृश हरा, सूर्य गौर, चन्द्रमा का मन्दार (पारिजात) के वृक्ष की तरह शुभ्र, शुक्र का अति धवल तथा राहु एवं शनि का काला वर्ण है ।

भाष्य : नष्ट पदार्थ या व्यक्ति के वर्ण का निश्चय करने के लिए यहाँ ग्रहों के वर्ण (रंग) का विचार किया गया है। सूर्यादि आठ ग्रह प्रसिद्ध सात रंगों के प्रतिनिधि हैं। अत: शनि एवं राहु दो ग्रहों का काला रंग और शेष छः ग्रहों के अपने-अपने विभिन्न रंग माने गये हैं। सूर्य का धवल वर्ण चन्द्रमा का शुभ्र एवं शुक्र का अति धवल वर्ण हम अपनी आँखों से देखते ही हैं। इसी प्रकार अन्यान्य ग्रहों की रश्मियों में भी उनके रंगों की छटा दूरदर्शकयन्त्र के वर्णच्छायापटल पर दिखलाई देती है।

प्रश्नकुण्डली में जो ग्रह बली होकर लग्न में स्थित हो या लग्न को देखता हो, उस ग्रह के वर्ण के अनुसार व्यक्ति या पदार्थ के रंग का निर्णय करना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि प्रश्नलग्न से सूर्य का सम्बन्ध हो तो गौर वर्ण, चन्द्रमा का सम्वन्ध हो तो गोरा या रेशम के समान शुभ्र वर्ण और शुक्र का सम्बन्ध हो, तो अत्यन्त धवल वर्ण कहना चाहिए ।

अवनीशो दिनमणिस्तपस्वी रोहिणीप्रियः ।
स्वर्णकारः क्षितेः पुत्रो ब्राह्मणो रोहिणी भवः ।।३४।।
वणिग्गुरुः कविर्वैश्यो वृषलः सूर्यनन्दनः ।
सैंहिकेयो निषादश्च सर्वकार्येषु संमतः ।।३५।।

सूर्य राजा, चन्द्रमा तपस्वी, मंगल सुनार, बुध ब्राह्मण, गुरु व्यापारी, शुक्र वैश्य, शनि सेवक और राहु निषाद (भील या हिंसक है)—सब कार्यों में यह विचार करना ठीक है।

भाष्य : जीव-प्रश्न में जाति का ज्ञान पहले किया जा चुका है। अब उसका कर्म या व्यवसाय जानने के लिए ग्रहों की वृत्ति का विचार किया जा रहा है। आजीविका या व्यवसाय का चुनाव करने के प्रश्न में भी यह निर्णायक भूमिका अदा करता है।

एक और बात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि उक्त दोनों श्लोकों में राजा, तपस्वी एवं स्वर्णकार आदि शब्द अपने शब्दार्थ में रूढ़ न होकर व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं। ये शब्द एक विशेष प्रकार की वृत्ति और प्रकृति की ओर संकेत करते हैं। उदाहरणार्थ, सूर्य को राजा कहा गया है। राजा का तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जो अपने क्षेत्र में शीर्षस्थ हो और सब कुछ निर्णय करने में प्रायः स्वतन्त्र हो। अतः राजा राजनैतिक नेता, मन्त्रिमण्डल के सदस्य शासन के उच्चाधिकारी, विभिन्न विभागों के वरिष्ठ अधिकारी, स्वायत्त संस्था के अध्यक्ष, नगर, जनपद एवं ग्रामों के स्थानीय शासन निकाय के प्रमुख तथा विभिन्न संस्थाओं के प्रधान आदि सभी सूर्य के प्रभाव में आ जाते हैं।

चन्द्रमा तपस्वी है। तपस्वी का अभिप्राय उस व्यक्ति से है, जिसका जीवन त्याग, तपस्या एवं परोपकार के लिए विसर्जित हो। इसलिए त्याग एवं तपस्या करने वाले समस्त संन्यासी, मुनि, योगी, धर्माचार्य एवं विभिन्न धर्मों के आस्तिक अनुयायियों के साथ-साथ समाज सेवी, स्वतन्त्रता संग्राम के

सेनानी, विभिन्न संस्थाओं के अवैतनिक पदाधिकारी, समाजसेवी एवं शिक्षा संस्थाओं के संस्थापक और दानदाता तथा समाज-कल्याण कार्य में लगे विभिन्न ट्रस्टों के ट्रस्टी आदि सभी लोग चन्द्रमा के प्रभाव में माने जाते हैं।

मंगल स्वर्णकार (सुनार) है। अग्नि, शस्त्र, औजार आदि से धातु-कर्म करने के अर्थ को संकेतित करने वाला शब्द स्वर्णकार है। परिणामतः विभिन्न धातुओं का कार्य करने वाले सुनार, लुहार एवं ठठेरा आदि तथा शस्त्र निर्माता, मशीन एवं कलपुर्जों को बनाने वाले, ईंटों के भट्टे, हलवाई, होटल चलाने वाले, भड़भूजे एवं शस्त्रों से आजीविका करने वाले सैनिक, शिकारी और दस्यु आदि सब मंगल के प्रभाव क्षेत्र में हैं।

बुध ब्राह्मण है। ब्राह्मण का अभिप्राय उस व्यक्ति से है, जो ब्रह्म या तत्त्व ज्ञान में पारंगत हो। अतः दार्शनिक, वैज्ञानिक शोधकर्ता, विश्वविद्यालय एवं अन्य शिक्षा संस्थाओं के सुयोग्य अध्यापक, विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ, साहित्य मर्मज्ञ, धर्मोपदेश एवं व्याख्याता आदि बुध के प्रभाव में स्वीकार किये गये हैं।

गुरु व्यापारी है। इसलिए क्रय-विक्रय करने वाले, आढ़तिया, थोक एवं फुटकर व्यापारी, शेयर मार्केट का कार्य करने वाले, बैंकर्स, फाइनेन्सरर्स और आयात-निर्यात करने वाले सभी लोग गुरु का प्रभाव व्यक्त करते हैं।

शुक्र वैश्य है। खेती, गोपालन एवं अन्य उत्पादनों में संलग्न व्यक्ति को प्राचीन काल में वैश्य कहा गया है। इसलिए खेती करने वाले, दूध और डेरी उद्योग में संलग्न व्यक्ति, विभिन्न प्रकार के लघु उद्योग को चलाने वाले, बड़े-बड़े उद्योगपति और उक्त कार्यों में लगे कर्मचारी आदि शुक्र के प्रभाव में

माने जाते हैं।

शनि दास या सेवक है। इसलिए विभिन्न विभागों में नौकरी करने वाले, भार ढ़ोने वाले, घरेलू नौकर, दैनिक मजदूर, स्वयं सेवक, वालन्टियर, दूत, संदेशवाहक, ड्राइवर एवं श्रमिक आदि शनि से प्रभावित स्वीकार किये गये हैं।

राहु चाण्डाल है। जो व्यक्ति अपराध, समाज विरोधी कार्य एवं हिंसक वृत्ति का हो, उसे चाण्डाल कहा गया है। अतः चोरी, तस्करी, भ्रष्टाचार, जुआ एवं अन्याय अनैतिक कार्य, करने वाले, शिकारी, कसाई; मांसविक्रेता एवं दस्यु आदि राहु के प्रभाव को अभिव्यक्त करते हैं।

प्रश्न कुण्डली में लग्न एवं दशम स्थान से सम्बन्ध रखने वाले ग्रह की जो वृत्ति है, व्यक्ति उसी प्रकार की आजिविका में संलग्न होता है। यदि इस प्रकार के ग्रहों की संख्या अधिक हो, तो उनमें से जो बलवान् हो उसके अनुसार आजीविका का निर्णय कर लेना चाहिए। आजिविका कारक ग्रह के निर्बल होने पर व्यवसाय में प्रायः परिवर्तन होता रहता है।

शुक्रे चन्द्रे भवेद्रौप्यं बुधे स्वर्णमुदाहृतम्।
गुरौ रत्नयुतं हेम सूर्ये मौक्तिकमुच्यते ॥३६॥
भौमे त्रपु शनौ लौहं राहावस्थीनि कीर्तयेत्।
धातोर्विनिश्चये जाते विशेषोऽस्मादुदाहृतः ॥३७॥

अर्थात् शुक्र और चन्द्रमा हो, तो चाँदी और बुध होने पर सुवर्ण कहा गया है। गुरु हो तो रत्न जटित सोना (आभूषण) सूर्य हो तो मोती कहा गया है। मंगल हो तो सीसा, शनि हो

तो लोहा और राहु हो तो अस्थि (हड्डी) आदि बतलाना चाहिए। धातु के निर्णय हो जाने पर इस प्रकार से विशेष रूप से (धातु ज्ञान) कहा गया है।

भाष्य : पहले श्लोक २८ में जिस रीति से धातु, मूल एवं जीव का निश्चय किया गया है उस रीति से प्रश्न धातु संबंधी है यह निर्णय कर लेने के बाद इस प्रकार विशेष धातु का ज्ञान करना चाहिए।

धातु सम्बन्धी प्रश्न में योग कारक ग्रह से सूर्यादि ग्रहों का सम्बन्ध होने से विशेष धातु का ज्ञान इस प्रकार किया जाता है—यदि बलवान शुक्र या चन्द्रमा का सम्बन्ध हो, तो पृच्छक के मन में चाँदी या रुपया आदि की चिन्ता कहनी जाहिए। इसी तरह यदि योग कारक ग्रह से बुध सम्बन्धित हो स्वर्ण की, गुरु हो तो रत्नजटित आभूषण की, सूर्य हो तो मोती की (मतान्तर से मोती लगा आभूषण), मंगल हो तो सीसा की (मतान्तर से तांबा या लाल रत्न, मूंगा आदि), शनि हो तो लोहा की और राहु हो तो हाथी दाँत या अस्थियों से बने पदार्थ की चिन्ता प्रश्न कर्ता के मन में होती है। प्रश्नशास्त्र के अन्य आचार्यों का भी प्रायः यही मत है।

शुक्रे चन्द्रे जलाधारो देवतावसतिर्गुरौ।
रवौ चतुष्पदस्थानमिष्टकानिचयो बुधे ॥३८॥
दग्धस्थानं कुजे प्रोक्तं शनौ राहौ च बाह्यभूः।
अमीभिर्हिबुकस्थाने नष्ट भूमिं विलोकयेत् ॥३९॥

अर्थात् शुक्र और चन्द्रमा हो तो जलाशय के पास, गुरु हो तो देवालय के, सूर्य हो तो पशु गृह, बुध हो तो ईंटों से बने

स्थान, मंगल हो तो जला हुआ स्थान (रसोई घर आदि) तथा शनि और राहु हो तो बाहरी भूमि (खेत, जंगल, बाटिका आदि) कहा गया है। चतुर्थ स्थान में इन (ग्रहों की स्थिति) के द्वारा नष्ट (चोरी किया या गुम गया) पदार्थ की (किस) भूमि में स्थिति है उसका विचार करना चाहिए।

भाष्य : घर से भागा हुआ या अपहृत व्यक्ति और चोरी की गई या खो गयी वस्तु इस समय कहाँ स्थित है ? इस प्रश्न में प्रश्न लग्न से चतुर्थ स्थान में ग्रहों की स्थिति अथवा सम्बन्ध का विचार कर ग्रह के अनुसार उस स्थान का निश्चय करना चाहिए। उदाहरणार्थ यदि प्रश्नकुण्डली में चतुर्थ स्थान में शुक्र या चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ से शुक्र या चन्द्रमा का सम्बन्ध हो तो नष्ट वस्तु या व्यक्ति जलाशय (तालाब, नदी, सरोवर कुआँ, वावड़ी, नलकूप या पानी की टंकी आदि) के निकट है-- ऐसा जानना चाहिए।

इसी प्रकार यदि सूर्य चतुर्थ स्थान में स्थित हो या उसका उक्त स्थान से सम्बन्ध हो तो नष्ट पदार्थ गौशाला, अश्वशाला (घुड़शाला), या अन्य पशुओं को रखने के स्थान में होता है। यदि बुध उक्त स्थान में स्थित हो तो वह वस्तु ईंट, चूना, पत्थर आदि से बने पक्के मकान कोठी, बंगला अथवा ईंट पत्थर की दुकान में होती है। यदि मंगल वहाँ बैठा हो तो वह वस्तु रसोईघर, होटल, हलवाई की दुकान, भाड़, बेकरी या कारखाने की भट्टी के आसपास होती है। यदि गुरु की उस स्थान में स्थिति या सम्बन्ध हो तो वस्तु मन्दिर, मठ, मस्जिद, गिरजा घर या गुरुद्वारे आदि में होती है। शनि एवं राहु की स्थिति वश वस्तु बस्ती के बाहर खेत, जंगल, खण्डहर या पर्वत आ-

पर कहनी चाहिए। इस प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्न लग्न के स्वामी का उक्त ग्रहों से सम्बन्ध होने पर ही यह फल यथार्थ रूप में मिलता है। यदि ऐसा न हो तो प्रश्न लग्न में स्थित राशि के अनुसार स्थान का निर्णय करना चाहिए। आचार्य नीलकण्ठ एवं भट्टोत्पल आदि का भी यही मत है।

प्रश्न लग्न में मेषादि राशियों के अनुसार नष्ट वस्तु, व्यक्ति किस स्थान में है यह ज्ञान नीचे लिखे चक्र से कर लेना चाहिए।

नष्ट वस्तु स्थान ज्ञानार्थं चक्रम्

राशियाँ	नष्ट वस्तु/व्यक्ति का स्थान
मेष	वन वन पर्वत, खाई, गड्ढा आदि
वृषभ	गोचर भूमि, गोशाला, डेरी फार्म एवं ग्वालाओं की बस्ती
मिथुन	नृत्य गीतशाला, सिनेमा, थियेटर, शिक्षासंस्था, क्रीड़ास्थान
कर्क	तालाब, कुंआ, बावड़ी, नहर, नदी आदि के निकट
सिंह	जंगल, व्यायामशाला, अगम्य एवं दुर्गम स्थान
कन्या	नौका, मछुओं की बस्ती, विहार स्थान, एवं कन्या विद्यालय
तुला	दुकान, व्यापारिक संस्थान, अदालत एवं मालखाना
वृश्चिक	खण्डहर, गड्ढा, सुरंग, तहखाना एवं गुप्त स्थान
धनु	छावनी, किला, पुलिस स्टेशन एवं युद्ध भूमि
मकर	तीर्थ स्थान, सरोवर, समुद्र का किनारा एवं द्वीप
कुम्भ	शराब खाना, जुए का अड्डा, वेश्यालय एवं भाण्डागार
मीन	समुद्र का किनारा, मन्दिर, जलाशय एवं टापू

जीवमङ्गल मार्त्तण्डान्वदन्ति पुरुषान्बुधाः।
सोमसोमजमन्दाहिभृगु पुत्रांश्च योषितः ॥४०॥

अर्थात् विद्वान् गुरु, मंगल एवं सूर्य को पुरुषग्रह तथा चन्द्रमा, बुध, शनि, राहु एवं शुक्र को स्त्री ग्रह कहते हैं।

भाष्य : सूर्यादि आठ ग्रहों में से सूर्य, मंगल एवं गुरु इन ३ ग्रहों को आचार्य ने पुरुष ग्रह माना है और शेष को स्त्री ग्रह। किन्तु कुछ विद्वान् बुध को नपुंसक ग्रह मानते हैं।

जीव सम्बन्धी प्रश्न में अमुक जीव पुरुष है या स्त्री यह निश्चय करने के लिए लग्न के साथ और योग कारक ग्रहों के साथ पुरुष ग्रह या स्त्री ग्रह का सम्बन्ध होने पर पुरुष या स्त्री का निर्णय करना चाहिए। गर्भ प्रश्न में पुत्र अथवा कन्या का जन्म, चोर प्रश्न में स्त्री-पुरुष का निर्णय और लाभादि के प्रश्न में पुरुष या स्त्री जिससे लाभ होगा आदि का विचार भी इसी आधार पर किया जाता है।

युवा कुजः शिशुः सौम्यः शशिशुक्रो च मध्यमौ।
मन्दमार्तण्डदेवेज्यफणिनः स्थविराः ग्रहः ॥४१॥

अर्थात् मंगल युवक, बुध बालक, चन्द्रमा एवं शुक्र मध्य अवस्था (प्रौढ़) तथा शनि, सूर्य, गुरु एवं राहु वृद्ध हैं।

भाष्य : जीव सम्बन्धी प्रश्न में उसकी अवस्था जानने के लिए ग्रहों की अवस्था का निरुपण किया गया है। चोरी के प्रश्न में भी चोर की आयु का निर्णय इसी आधार पर किया जाता है। उदाहरणार्थ चोरी के प्रश्न में चतुर्थ स्थान से मंगल का सम्वन्ध हो तो चोर युवक होता है। इसी प्रकार वुध का सम्वन्ध हो तो बालक, चन्द्रमा और शुक्र का सम्वन्ध हो तो प्रौढ़ तथा सूर्य, गुरु, शनि या राहु का सम्वन्ध हो तो वह वृद्ध होता है। आचार्य नीलकण्ठ दैवज्ञ का भी लगभग यही मत है।'

१. चौरस्य वयो ज्ञाने सिते युवा शिशुर्गुरौ मध्यः।
तरुणो भौमे मन्दे वृद्धोऽर्के स्यादति स्थविरः ॥
ताजि० नील० प्रश्नतन्त्र

भौममन्दार्क भोगीन्द्राः प्रकृत्या दुःखदा नृणाम् ।
ज्ञगुरुश्वेत किरण शुक्राः सुखकराः सदा ॥४२॥

अर्थात् मंगल, शनि, सूर्य, और राहु स्वभावतः मनुष्यों को दुःख देने वाले हैं। बुध, गुरु शुक्र, और चन्द्रमा सदैव सुख देनेवाले हैं।

भाष्य : सूर्य, मंगल, शनि और राहु ये चार पापग्रह तथा बुध, गुरु, शुक्र और चन्द्रमा शुभ माने गये हैं। किन्तु कुछ आचार्य चन्द्रमा को सदैव शुभ ग्रह नहीं मानते! उनके मतानुसार क्षीण चन्द्रमा पाप ग्रह होता है। बुध के वारे में भी मतभेद दिखाई देता है। वराह मिहिर, कल्याणवर्मा, जीवनाथ एवं भट्टोत्पल आदि विद्वानों ने शुभ ग्रह से युक्त बुध को शुभ तथा पाप ग्रह से युक्त बुध को पापी माना है।

चन्द्रमा के शुभाशुभत्व का निर्णय उसकी कलाओं में ह्रास एवं वृद्धि के अनुसार किया जाता है तथा उसी के आधार पर वल का निर्णय भी। फलदीपिका में आचार्य मन्त्रेश्वर ने कहा है कि शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि तक चन्द्रमा मध्यमवली, शुक्ल पक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक पूर्णवली तथा कृष्णपक्ष की षष्ठी से अमावस्या तक वह हीन वली होता है।[1] पूर्णवली चन्द्रमा शुभ ग्रह और हीन वली या क्षीण चन्द्रमा पाप ग्रह माना गया है।

१. शुक्लादिरात्रिदशकेऽहनि मध्यवीर्यं।
शाली द्वितीयदशकेऽति शुभप्रदोऽसौ।
चन्द्र स्तृतीयदशके वलवर्जितस्तु,

शुभ एवं पाप ग्रहों के निर्णय के प्रसंग में अधिकांश आचार्यों का मत यह है कि गुरु और शुक्र शुभ ग्रह हैं, सूर्य, मंगल, शनि राहु एवं केतु पाप ग्रह हैं तथा चन्द्रमा और बुध परिस्थिति के अनुसार कभी शुभ तथा कभी पाप ग्रह बन जाते हैं।

ग्रहों के शुभ क्रूर आदि स्वभाव द्वारा प्रश्न कर्त्ता, चोर, शत्रु या मित्रादि के स्वभाव का ज्ञान भी होता है। लग्न एवं चतुर्थ भाव पर शुभ ग्रहों का प्रभाव होने पर व्यक्ति शांत एवं मधुर प्रकृति, हँसमुख, दयालु, पवित्र, एवं सात्विक विचार वाला, परोपकारी, सहनशील, सच्चरित्र एवं उदार हृदय होता है। इसी प्रकार उक्त स्थानों पर पाप ग्रहों का प्रभाव होने पर व्यक्ति दुष्ट, मायावी, प्रपञ्ची, दुराचारी, भ्रष्टाचारी, क्रोधी हिंसक, आलसी एवं अनैतिक आचरण करने वाला होता है। इस तरह शुभ एवं पाप ग्रहों के प्रभाव का सावधानीपूर्वक मनन कर व्यक्ति की प्रकृति के बारे में निश्चय करना चाहिए।

शुभ एवं पाप ग्रहों का उक्त वर्गीकरण नैसर्गिक दृष्टि से किया है। पाराशर आदि ने भावेश के अनुसार भी शुभाशुभत्व का विवेचन किया है।

७. अथ द्वादश भाव विचार द्वारम्

रुपलक्षणवर्णानां क्लेशदोषसुखायुषाम् ।
वयः प्रमाणजातीनां तनुस्थानान्निरीक्षयेत् ॥४३॥

अर्थात् (व्यक्ति का) स्वरूप, लक्षण, वर्ण (रंग) क्लेश, दोष, सुख, आयु, वय प्रमाण और जाति इन सबका लग्न से विचार करना चाहिए।

भाष्य : इस द्वार में लग्नादि द्वादश भावों से विचारणीय

विषयों का निरूपण किया गया है। क्रान्तिवृत्त या राशिचक्र का जो प्रदेश पूर्वक्षितिज से संलग्न रहता है, वह लग्न कहलाता है। इसी प्रकार पश्चिम क्षितिज से संलग्न क्रान्ति वृत्त के प्रदेश को अस्तलग्न या सप्तम भाव कहते हैं। ऊर्ध्वयाम्योत्तर-वृत्त से संलग्न क्रान्तिवृत्त का प्रदेश दशमलग्न तथा अधोयाम्योत्तरवृत्त से लगा हुआ भाग चतुर्थ भाव कहा जाता है। एक अहोरात्र या २४ घन्टों में द्वादश राशियाँ क्रमशः पूर्वक्षितिज में उदित होकर लग्न या तनुभाव के रूप में हमारे सामने आती हैं। मध्यम मान से एक लग्न का भोग मान लगभग २ घन्टा होता है। प्रश्न कुण्डली का निर्माण करने से पहले इष्टकाल का साधन कर या साम्पतिक काल का आनयन कर फिर स्पष्ट लग्न का साधन कर लेना चाहिये। ज्योतिष शास्त्र के सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों में लग्नानयन की सूक्ष्म गणितीय प्रक्रिया का सोपपत्तिक विवेचन किया गया है। साथ ही तन्वादि द्वादश भावों के स्पष्टीकरण की रीति भी बतलायी है। किन्तु सम्प्रति सारणी द्वारा लग्नानयन एवं भाव स्पष्ट की रीति अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय है। अतः इष्टकाल एवं स्पष्ट सूर्य के माध्यम से स्वदेशीय अक्षांश और पलभा पर बनी लग्नसारिणी द्वारा लग्नानयन कर लेना चाहिए अथवा साम्पतिक काल का साधन कर 'राफेल' की लग्नसारिणी द्वारा स्वदेशीय अक्षांश पर स्पष्ट लग्न का ज्ञान कर तन्वादि द्वादश भावों का स्पष्टीकरण करना चाहिये। क्योंकि सूक्ष्म एवं स्पष्ट लग्न और अन्य भावों के ज्ञान के बिना यथार्थ फलादेश नहीं किया जा सकता।

तन्वादि द्वादश भावों के फल का निश्चय करने से पूर्व

इन भावों से विचारणीय विषयों की चर्चा कर लेना सर्वथा प्रासंगिक है। आचार्य ने लग्न से इन विषयों का विचार करने का उल्लेख किया है। व्यक्ति का स्वरूप, (कद छोटा है या बड़ा तथा शरीर पुष्ट है या कृश आदि) लक्षण (तिल, मशक एवं लहसुन आदि चिन्ह) वर्ण (गौर, श्याम आदि रंग), क्लेश (दुःख कष्टादि) दोष (स्वभावगत अवगुण), सुख (स्त्री धन पुत्र शरीर आदि का) आयु, वयप्रमाण (बाल, युवा एवं वृद्ध अवस्था) एवं जाति (ब्राह्मण क्षत्रिय आदि) इन सबका विचार, लग्न से करना चाहिये। इसके अलावा व्यक्ति का शील, स्वभाव, यश, स्वास्थ्य जीवन में उत्थान-पतन एवं विशेष प्रगति का भी लग्न से विचार किया जाता है। आचार्य नीलकण्ठ दैवज्ञ का भी यही मत है।

मणिमुक्ताफलं स्वर्णं रत्नधातुकदम्बकम्।
क्रयाणकार्घज्ञानानि धनस्थानान्निरीक्षयेत् ॥४४॥

अर्थात् मणि, मोती, सोना, रत्न, धातुसमूह और किराने की वस्तुओं की तेजी-मन्दी का विचार धन भाव से करना चाहिए।

भाष्य : दूसरे भाव से जिन वस्तुओं का विचार किया जाता है, उनकी सूची इस प्रकार है—पन्ना, पुखराज, नीलम, मानिक्य एवं वैदूर्य आदि मणि, मोती, हीरा आदि बहुमूल्य रत्न, सुवर्ण, चाँदी, पीतल, जस्ता, ताँबा, लोहा एवं काँसा आदि धातुयें तथा किराने की वस्तुओं (दैनिक उपभोग का सामान) की तेजी-मन्दी का विचार इस भाव से किया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐश्वर्य, कुटुम्ब, वस्त्र, मुख, अश्व आदि वाहन, मार्ग सम्बन्धी कार्य और कोष आदि का भी विचार इस

भाव से करते हैं ।[1]

भगिनीभ्रातृभृत्यानां वासकर्मकृतामपि ।
कुर्वीत वीक्षणं विद्वान्सम्यग् दुश्चिकयवेश्मनि ॥४५॥

अर्थात् बहिन, भाई, नौकर एवं सेवक आदि का विचार विद्वान् तीसरे भाव से करें ।

भाष्य : तीसरे भाव से विचारणीय विषय हैं—बहिन, भाई, नौकर एवं दास-दासी आदि घरेलू सेवक जन । इस भाव से पराक्रम शौर्य, साहस, भोजन, समुद्रयात्रा, व्यापारादि उद्यम और विवाद में हार-जीत का भी विचार करते हैं ।[2]

वाटिकाखलकक्षेत्रमहौषधिनिधीनिह ।
विवरादिप्रवेशं च पश्येत्पातालतो बुधः ॥४६॥

अर्थात् वाटिका, खलिहान, औषधि, निधि, खेत एवं कन्दरा (गुफा सुरंग) आदि में प्रवेश इनका निरीक्षण विद्वान् चौथे भाव से करें ।

भाष्य : चतुर्थ भाव से वाटिका, खलिहान, पेटेन्ट दवाइयाँ, खेत, भूमि, जायदाद, जमीन में गढ़ा हुआ धन और कन्दरा सुरंग आदि में प्रवेश का विचार किया जाता है । इसके अलावा बाग, उद्यान, सरोवर, गृहप्रवेश, मित्र, माता, वाहन एवं पिता

१. मुक्ताफलं च माणिक्यं रत्नधातुधनाम्बरम् ।
हयकार्याध्वविज्ञानं वित्तस्थानाद्विलोकयेत् ॥
ता० नीलकण्ठी-प्रश्नतन्त्र श्लोक-३४

२. विक्रमे भ्रातृमृत्या ध्वपित्र्य स्खलन साहसम् ।
ताजि० नील० संज्ञातन्त्र-५०

के द्रव्य का भी विचार किया जाता है ।[1]

> गर्भापत्यविनेयानां मन्त्रसाधनयोरपि ।
> विद्याबुद्धिप्रबन्धानां सुतस्थानाद्विनिश्चयः ॥४७॥

अर्थात् गर्भ, सन्तान, शिष्य, मन्त्रसाधन, विद्या, बुद्धि और ग्रन्थ रचना का पंचम स्थान से निश्चय करें।

भाष्य : पञ्चम भाव से गर्भस्थिति, गर्भस्राव, पुत्र-कन्या सन्तति, साम्प्रदायिक शिष्य और अनुयायी, आध्यात्मविद्या एवं भौतिकशास्त्र, बुद्धि और साहित्य सृजन की क्षमता का विचार किया जाता है। साथ ही मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र की सिद्धि तथा आकस्मिक लाभ का भी विचार करते हैं।[2]

> सौरिभीरिपुसंग्राम गवोष्ट्रक्रूरकर्मणाम् ।
> मातुलातङ्कशङ्कानां रिपुस्थानाद्विनिर्णयः ॥४८॥

अर्थात् भैंस, शत्रुओं से युद्ध, गाय, ऊँट, क्रूरकर्म, मातुल, भय एवं शंका का निर्णय छठें भाव से करें।

भाष्य : षष्ठ भाव स्थान से विचारणीय विषयों में प्रमुख हैं—भैंस, शत्रुओं से लड़ाई, मुकदमेबाजी, गाय, ऊँट, मारण मोहन उच्चाटन, स्तम्भन आदि अभिचार क्रिया, हिंसा आदि क्रूरकर्म, मामा भय और आशंका आदि। साथ ही इस भाव से रोग, विरोध, चोर, विवाद, अग्नि काण्ड, दुर्घटना, चोट और

१. पितृवित्तं निधिक्षेत्रं गृहं भूमिश्च तुर्यतः ।

तत्रैव श्लो० ५१

२. पुत्रे मन्त्र धनोपायगर्भविद्यात्मजेक्षणम् ।

तत्रैव श्लो० ५१

पराधीनता का भी विचार किया जाता है ।[१]

वाणिज्यं व्यवहारं च विवादं च समं परैः ।
गमागमकलत्राणि पश्येत् प्राज्ञः कलत्रतः ॥४६॥

अर्थात् वाणिज्य, व्यापार, विवाद, आवागमन और स्त्री का विचार विद्वान् सप्तम भाव से करें ।

भाष्य : इस भाव से व्यापारिक विभिन्न कार्य, लेन-देन, व्यवसाय का चुनाव, राजनैतिक एवं व्यावहारिक विवाद, यात्रा तथा प्रवास से निवृत्ति और परणीता पत्नी का विचार किया जाता है । इसके साथ-साथ विवाह, रोमांस (प्रणय सम्बन्ध), नष्टपदार्थ, वधू-प्रवेश, रतिकलह, समुद्र यात्रा, चोरी का माल एवं विस्मृति का भी निर्णय होता है ।

नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये दुर्गे शात्रवसंकटे ।
नष्टे दंष्ट्रे रणे व्याधौ छिद्रे छिद्रं निरीक्षयेत् ॥५०॥

अर्थात् नदी पार करना, यात्रा में आपत्ति, दुर्गभंग, शत्रु-संकट, नष्ट, सर्पदंश, व्याधि और गृहछिद्र का विचार अष्टम स्थान से करें ।

भाष्य : इस भाव से विचारणीय विषयों में—नदी, समुद्र आदि पार करना, समुद्र यात्रा में आपत्ति, दुर्ग पर संकट, शत्रुओं की बाधा और बन्धन, मृत्यु, अपहरण, चोरी हुआ द्रव्य, सर्प, बिच्छू और कुत्ते का काटना, रोग, आकस्मिक दुर्घटना तथा भूत-प्रेत, पिशाच-शाकिनी आदि भय मुख्य हैं । ऋण, ऊँची-

१. रिपौ मातुलमान्धारि चतुस्पाद्वन्ध भीव्रंण.न् ।

तत्रैव श्लो० ५२

नीची भूमि, शस्त्र का घाव, कुश्ती, द्वन्द्व युद्ध, अपशकुन, पिशुनता, नम्रता, श्वसुर और सास का भी विचार इस भाव से किया जाता है।[१]

वापीकूपतडागादि प्रपादेवगृहाणि च।
दीक्षा यात्रा मठं धर्मं धर्मान्निश्चित्य कीर्तयेत् ॥५१॥

अर्थात् बावड़ी, कुआँ, तालाब, जलपात दीक्षा, तीर्थयात्रा, धर्ममठ और धर्मस्थान का निश्चय नवम भाव से करें।

भाष्य : यह भाव धर्म भाव कहा गया है। अतः जनकल्याण के लिए बनाये गये, कुआँ बावड़ी, तालाब, घाट एवं प्याऊ आदि के साथ धर्म दीक्षा, तीर्थ यात्रा, धार्मिक मन्दिर, मठ, धर्मशाला और धार्मिक न्यासों का विचार इस भाव से होता है। यह भाग्य स्थान भी कहा जाता है। अतः भाग्योदय, राज्यभिषेक, यश सम्मान एवं आकस्मिक लाभ का विचार भी इस भाव से करते हैं। गुरु, देव एवं दैवीकृपा प्राप्ति का प्रतिनिधित्व भी यह भाव करता है।[२]

राज्यं मुद्रां पुरं पण्यं स्थानं पितृ प्रयोजनम्।
वृष्ट्यादि व्योमवृत्तान्तं व्योम स्थाना द्विलोकयेत् ॥५२॥

अर्थात् राज्य, मुद्रा, नगर, व्यापार, सामाजिक स्थान, पितृकर्म, वर्षा एवं आकाश आदि दशम स्थान से देखें।

१. मृत्यौ चिरन्तनं द्रव्यं मृतवित्तं रणो रिपुः।
दुर्गस्थानं मृतिर्नष्टं परिवारो मनो व्यथा॥

तत्रैव श्लो० ५३

२. धर्मे रतिस्तथा पन्था धर्मोपायं विचिन्तयेत्।

तत्रैव श्लो० ५४

भाष्य : यह भाव राज्य, राजगद्दी, राजनैतिक सत्ता एवं प्रभाव, राजमुद्रा, राजधानी, नगर, व्यवसाय, सामाजिक हैसियत, पैतृक दायित्व, वर्षा एवं अंतरिक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। इस भाव से प्रभाव, प्रतिष्ठा, कीर्ति, सम्मानित उपाधि, विदेश यात्रा (विशेष कर वायुयान से यात्रा) एवं लोकापवाद का भी विचार करते हैं।[1]

गजाश्वयानवस्त्राणि सस्यकाञ्चनकन्यकाः ।
विद्वान् विद्यार्थयोर्लाभं लक्षयेल्लाभलग्नतः ॥५३॥

अर्थात् हाथी, घोड़ा, वाहन, वस्त्र, धान्य, स्वर्ण, कन्या, विद्या और अर्थ का लाभ इन सबको विद्वान् एकादश भाव से देखें।

भाष्य : एकादश स्थान हाथी, घोड़ा, मोटर आदि यान, वस्त्र-आभूषण, धन-धान्य, लौकिक विद्या और अर्थ के लाभ का प्रतिनिधि भाव है। इससे पाण्डित्य, वाद-विवाद, तर्क एवं छोटे भाई का भी विचार होता है।[2]

त्याग भोगविवाहेषु दानेष्टकृषिकर्मणि ।
व्यय स्थानेषु सर्वेषु विद्धि विद्वन्व्ययं व्ययात् ॥५४॥

अर्थात् दान, भोगोपभोग, विवाह, इच्छित कार्य, खेती और अन्यान्य कार्यों पर व्यय का विचार द्वादश भाव से जानिये।

१. व्योम्नि मुद्रां परं पुण्यं राज्यवृद्धिञ्च पैतृकम्।

तत्रैव श्लो० ५४

२. आये सर्वार्थधान्यार्घं कन्यामित्रचतुष्पदाः।
राज्ञो वित्तं परीवारो लाभोपायाञ्च भूरिशः॥

तत्रैव श्लो० ५५

भाष्य : यह भाव व्यय का प्रतिनिधि है। अतः दान, विवाह, मनोरथ एवं खेती आदि आवश्यक कार्यों पर व्यय के साथ हानि, चोरी, राजदण्ड आदि अशुभ व्ययों का भी प्रतिनिधित्व करता है। इसके अतिरिक्त वन्धन चाचा, मामी, यात्रा नेत्र एवं पैर का भी विचार इससे किया जाता है।[1]

८. अथ इष्टकाल ज्ञानद्वारम्

भागं वारिधिवारिराशिशशिषु प्राहुर्मृगाद्येबुधाः,
षटके बाणकूपीटयोनि विधुषु स्यात्कर्कटाद्ये पुनः।
पादैः सप्तभिरन्वितैः प्रथमकं मुक्त्वा दिनाद्ये दले,
हित्वैकां घटिकां परे च सततं दत्त्वेष्टकालं वदेत् ॥५५॥

अर्थात् शरीर की छाया को अपने पाँव से नाप कर उसमें सात जोड़कर एक घटावें, यह भाज्य कहा गया है। मकरादि सात राशियों में सूर्य स्थित हो (उत्तरायण हो) तो १४४ से और कर्कादि सात राशियों में स्थित हो (दक्षिणायन हो) तो १३५ से भाग दें। प्राप्त लब्धि में मध्यान्ह से पहिले का समय हो, तो एक घटाने से और अपरान्ह का समय हो तो एक जोड़ने से घटयात्मक इष्टकाल कहना चाहिए।

भाष्य : सुदूरतम प्राचीन काल में जब घटीयन्त्रों का अभाव था, तब छाया के आधार पर ही इष्टकाल का साधन कर जन्म कुण्डली या प्रश्न कुण्डली बनाकर फलादेश कहने की परिपाटी थी। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में १२ अंगुल के शंकु की छाया से दिशा, अक्षांश, रेखांश स्पष्ट सूर्य, इष्टकाल एवं

१. व्यये वैरिनिरोधार्तिव्ययादि परिचिन्तयेत्।
तत्रैव श्लो० ५६

क्रान्ति आदि साधन के लिए विभिन्न नियमों का सहेतुक विवेचन मिलता है। इस विषय का विस्तार से निरूपण करने के लिए प्रायः सभी सिद्धान्त ग्रन्थों में 'त्रिप्रश्नाधिकार' नाम से एक पृथक् अध्याय जोड़ा गया है। आज के युग में सूर्योदय एवं जन्मकाल या प्रश्नकाल के अन्तर के द्वारा इष्टकाल का साधन सुगमतापूर्वक दिया जाता है। आचार्य द्वारा कहा गया उक्त प्रकार आज ऐतिहासिक महत्व का विषय मात्र है। यह इष्टकाल के साधन की प्राचोन परम्परा और उसके क्रमिक विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

इष्ट काल जन्मकुण्डली या प्रश्न कुण्डलो को बनाने का मूलभूत आधार है। फलादेश के लिए समस्त गणना इसी के आधार पर चलती है। सूर्योदय से लेकर जन्म समय या प्रश्न समय तक बीते हुये काल को इष्टकाल कहते हैं। अतः सूर्योदय से लेकर प्रश्न समय तक जितना घण्टा मिनिटात्मक काल हो, उसे ढ़ाई गुना कर देने पर इष्ट घटी पल बनता है। इसके लग्नादि का साधन कर प्रश्न कुण्डली बनायी जाती है।

६. अथ लग्नविचारद्वारम्

> इन्दुः सर्वत्र बीजाभो लग्नं तु कुसुमप्रभम्।
> फलेन सदृशोऽशश्च भावः स्वादुसमः स्मृत ॥५६॥

अर्थात् चन्द्रमा सर्वत्र बीज के समान है, तो लग्न पुष्प के समान है, नवांश फल समान है और भाव (उसके) स्वाद के समान है।

आचार्य ने यहाँ भाव सम्बन्धी फलादेश के चार महत्त्वपूर्ण उपकरण बतलाये हैं: १. चन्द्रमा, २. लग्न, ३. नवांश, और ४.

भाव। इनका महत्त्व समझाने के लिए इनकी तुलना एक फलते फूलते वृक्ष से की गयी है। चन्द्रमा फलित रूपी वृक्ष का वीज है, लग्न उसका पुष्प है तो नवांश उसका फल है और भाव उस फल का आस्वादन है। जैसे वीज के विना पुष्प, फल और फलास्वाद की कल्पना असम्भव है। उसी प्रकार चन्द्रमा का विचार किये विना यथार्थ फलादेश का ज्ञान असम्भव ही है। अतः प्रत्येक प्रश्न में सर्वप्रथम की चन्द्रमा स्थिति, अन्य ग्रहों से युति, दृष्टि एवं वलावल का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए। तदनन्तर लग्न, नवांश और सम्बन्धित भाव का गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। इस प्रकार इन चारों का परिशीलन कर निष्कर्ष रूप में जो फल ज्ञात हो, उसे कहने से फलादेश यथार्थ रूप में घटता है।

सारांश यह कि प्रश्नकाल में चन्द्रमा, लग्न, नवांश और भाव ये चारों वली हो तो कार्य की पूर्णसिद्धि होती है। इनमें से एकादि के निर्बल होने पर अनुपात से कार्यसिद्धि की कल्पना करनी चाहिए।

उदितं चिन्तयेद्भावं भावि भूतञ्च चिन्तयेत्।
कार्यभावेन योगञ्च कार्यं भावस्थितं ग्रहम् ॥५७॥

अर्थात् उदित (लग्न) भाव का विचार करे और फिर भूत भविष्यत् भाव का चिंतवन करे। कार्य भाव के द्वारा योग और कार्य भाव में स्थित ग्रह का विचार करें।

भाष्य : प्रश्नलग्न से भूत, भविष्य एवं वर्तमान की जानकारी के लिए आचार्य ने उक्त श्लोक के पूर्वार्द्ध में संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। प्रत्येक राशि में ३०-३० अंश होते हैं। अतः लग्न का स्पष्टीकरण कर उसके भुक्तांशों को भूतकाल, भोग्यांशों को

भविष्यत् काल तथा जिस अंश पर लग्न स्थित है उसे वर्तमान काल मानकर भावेश ग्रह के बलाबल युति एवं दृष्टि के द्वारा शुभाशुभ फल का विचार करना चाहिए। इस रीति द्वारा कार्य का कितना हिस्सा बीत चुका है और कितना बाकी है इसका अनुमान सरलतापूर्वक किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, किसी ने कर्क राशि छह अंश बीतने पर प्रश्न किया। इसका फलितार्थ यह हुआ कि विचारणीय कार्य का एक अल्प (१/५) भाग शुभाशुभ रूप में व्यतीत हो चुका है। तथा उसका एक बड़ा (४/५) भाग शेष है।

विचारणीय कार्य जिस भाव से सम्बन्धी हो, उसके विभिन्न योगों का विचार कर और उसमें स्थित ग्रहों के फल का चिन्तवन कर फलादेश करना चाहिए।

उदितस्यादौ भावस्याधिपतिं चिन्तयेत्प्रयत्नेन।
तदनु च नाथो यस्मिन्नासीद्भावे विचार्यं तत् ॥५८॥

अर्थात् सर्वप्रथम उदित (लग्न) भाव के स्वामी का यत्न-पूर्वक चिन्तवन करे और फिर उस भाव का विचार करना चाहिए, जिसमें लग्न का स्वामी स्थित हो।

भाष्य : लग्नेश के फल का विचार करने के प्रसंग में सर्व-प्रथम उसका सावधानीपूर्वक चिन्तवन करना चाहिए। भावेश के फल का निर्णय करने की प्रक्रिया यह है—यदि भाव का स्वामी ग्रह नीच राशिगत, अस्तंगत, पापयुक्त, शत्रु पराजित, ग्रहयुद्ध में पराजित, हीन रश्मि वाला अथवा बलहीन हो तो वह अपना फल

देने में समर्थ नहीं होता।[1] ग्रहों की नीच राशि, शत्रु ग्रह और पाप ग्रह की चर्चा पहले श्लोक १३-१७ और श्लोक ४२ में की जा चुकी है। प्रसंगवश अस्तंगत, पराजित, हीन रश्मि और बलहीन ग्रह का संक्षिप्त विवेचन पाठकों की सुविधा के लिए दिया जा रहा है।

सूर्य के समीप आने से जब ग्रहों का प्रकाश मन्द पड़ जाता है, तो उन्हें अस्त कहते हैं। जब चन्द्रमा आदि ग्रहों का सूर्य से अन्तर यथाक्रमेण १२°, १७°, १४°, १२°, ११°, १०°, ८° और १५° अंश हो तो वे अस्त हो जाते हैं।[2] ग्रहों की अत्यन्त निकटता को ग्रहयुद्ध कहते हैं। यह दो या अधिक ग्रहों में सम्भव है। इस ग्रहयुद्ध में उत्तर की ओर रहने वाला एवं जाज्वल्यमान रश्मि वाला ग्रह विजयी तथा अन्य पराजित माने जाते हैं।[3] हीनरश्मि से तात्पर्य मन्दकिरणों वाले ग्रह हैं। गणितीय रीति से रश्मि साधन का प्रकार केशव आदि आचार्यों ने बतलाया है।[4]

जातक ग्रन्थों में ग्रहों के बलाबल का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। सामान्यतया ग्रहों के ५ प्रकार के बल बतलाये गये हैं १. स्थानबल, २. दिग्बल, ३. कालबल, ४. चेष्टाबल और ५. नैसर्गिक बल।

स्थानबल : जो ग्रह अपनी उच्चराशि, मूलत्रिकोण, स्वराशि,

१. नीचस्थिता अस्तमिताश्च पापा युक्ता स्तथा शत्रुजिता विरुक्षाः ।
बलेन हीनास्त्वणवश्च न. स्युः स्वकर्म कर्तुं खचराः समर्थाः ॥
जातक पारि० अ० ७ श्लो० १८

२. देखिये—सूर्यसिद्धान्त उदयास्ताधिकार

३. तत्रैव—ग्रह युत्यधिकार

४. देखिये—केशवीय जातक पद्धति

मित्रराशि अपने नवमांश या द्रेष्काण में होता है वह स्थान बली होता है।

दिग्बल : बुध और गुरु लग्न में, चन्द्रमा और शुक्र चतुर्थ में, शनि सप्तम में तथा सूर्य और मंगल दशम में दिग्वली होते हैं।

कालबल : चन्द्रमा, शुक्र और शनि रात्रि में सूर्य मंगल और गुरु दिन में तथा बुध सदैव कालवली होता है।

चेष्टाबल : सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण में और शेष ग्रह चन्द्रमा के साथ रहने पर चेष्टावली होते हैं। कुछ आचार्य ग्रहयुद्ध में विजयी, वक्री और जाज्वल्यमान रश्मि वाले ग्रह को भी चेष्टावली मानते हैं।

नैसर्गिकबल : शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा और सूर्य उत्तरोत्तर नैसर्गिक रूप से वलवान होते हैं।

कुछ आचार्यों ने इन पाँच वलों के अतिरिक्त 'दृग्वल' का भी विचार किया है। यह वल दृष्टि से सम्बन्ध रखता है इसके अनुसार शुभ ग्रहों से दृष्टग्रह वलवान होता है। इस प्रकार कुल मिलाकर वल छह प्रकार के होते हैं। इन वलों से रहित ग्रह को बलहीन कहते हैं।

जो ग्रह उच्च राशि, मित्र राशि, मूल त्रिकोण राशि में बलशाली हो, अस्तंगत न हो, ग्रहयुद्ध में विजयी हो, शुभ ग्रह और अपने मित्रों से युक्त हो तथा दुःस्थान में स्थित न हो वह अपना फल देने में समर्थ होता है।

उक्त रीति से लग्नेश का गम्भीरतापूर्वक मनन करने के उपरान्त उस भाव का भी विचार करना चाहिए, जिसमें लग्नेश स्थित हो। क्योंकि भावेश ग्रह त्रिक्स्थान (६, ८ एवं १२वें

भाव में) स्थित होकर अशुभ तथा केंद्र एवं त्रिकोण स्थान मे शुभ फल देता है ।[1]

भावोऽथ कार्यरूपो यस्तदधिपलग्नाधिपौ चिन्त्यौ ।
वीक्षणयोगौ भावाधिष्ठातारौ पुनश्चिन्त्यौ ॥५९॥

अर्थात् कार्य सम्बन्धी जो भाव है उसके स्वामी और लग्नेश इन दोनों का विचार करे। फिर इन दोनों भावों के स्वामियों की युति और दृष्टि का विचार करे।

भाष्य : लग्नादि १२ भावों में जिस भाव से सम्बन्धी प्रश्न हो उस भाव के स्वामी और लग्नेश इन दोनों के बलाबल, युति दृष्टि एवं स्थिति का विचार फल कथन से पूर्व करना आवश्यक है। क्योंकि इन्हीं के आधार पर फल कहा जाता है। उदाहरणार्थ 'यदि प्रश्न सन्तान सम्बन्धी हो तो पंचमेश और लग्नेश द्वारा स्त्री सम्बन्धी हो तो सप्तमेश और लग्नेश द्वारा तथा भाग्य सम्बन्धी प्रश्न हो तो भाग्येश और लग्नेश द्वारा उक्त रीति से विचार करना चाहिए।

लग्नपतिर्यदि लग्नंकार्याधिपतिश्च वीक्षते कार्यम् ।
लग्नाधीशः कार्यं कार्येशः पश्यति विलग्नम् ॥६०॥
लग्नेशः कार्येशं विलोकते विलग्नपं तु कार्येशः ।
शीतगुदृष्टौ सत्यां परिपूर्णा कार्यनिस्पत्तिः ॥६१॥

अर्थात् यदि लग्नेश लग्न को और कार्येश कार्यभाव को देखता हो (अथवा) लग्नेश कार्यभाव को और कार्येश लग्न को

१. यस्दावनाथो रिपुरिःफ रन्ध्रे दुःस्थानपो यस्दवनस्थितो वा।
सस्दावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः —जातक पारि० ॥

देखता हो (अथवा) लग्नेश कार्येश को और कार्येश लग्नेश को देखता हो तथा इन पर चन्द्रमा की दृष्टि हो, तो कार्य की पूर्ण सिद्धि होती है।

भाष्य : श्लोक ५६ में लग्न एवं कार्यभाव का महत्त्व बतलाया जा चुका है और श्लोक ५९ में लग्नेश एवं कार्येश की युति दृष्टि आदि सम्बन्धों का विचार किया गया है। यहां लग्नेश एवं कार्येश के सम्बन्ध से पूर्णसिद्धि के तीन योग कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं :

(i) लग्नेश की लग्न पर और कार्येश की कार्यभाव पर दृष्टि तथा इन पर चन्द्रमा की दृष्टि।

(ii) लग्नेश की कार्यभाव पर और कार्येश की लग्न पर दृष्टि तथा इन पर चन्द्रमा की दृष्टि।

(iii) लग्नेश एवं कार्येश की परस्पर दृष्टि तथा इन पर चन्द्रमा की दृष्टि।

यदि प्रश्नकुण्डली में उक्त तीनों योगों में से एक भी योग बनता हो तो प्रश्नकर्ता के कार्य की पूर्णसिद्धि बतलानी चाहिए।

उदाहरणार्थ—किसी प्रश्नकर्त्ता ने सन्तति सम्वन्धी प्रश्न किया। प्रश्नकाल में वृश्चिक लग्न और तात्कालिक ग्रहस्थिति के आधार पर प्रश्नकुण्डली बनायी गई जो इस प्रकार है—

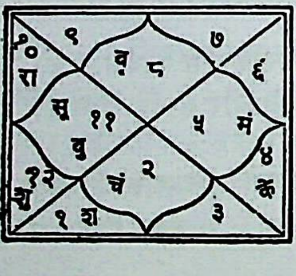

इस कुण्डली में लग्नेश मंगल की लग्न पर और पंचमेश गुरु कार्यभाव (पंचम) पर पूर्णदृष्टि है। तथा सप्तम स्थान में स्थित चन्द्रमा की गुरु पर दृष्टि है। इस प्रकार यहाँ उक्त योगों में से प्रथम

योग पूर्णतः बनता है। अतः पृच्छक को शीघ्र सन्तति लाभ होगा।

एक अन्य ने विवाह का प्रश्न मेष लग्न में किया। ग्रहस्थिति के अनुसार कुण्डली बनायी गयी। इस कुण्डली में लग्नेश मंगल की कार्यभाव (सप्तम) पर पूर्ण दृष्टि है और कार्येश शुक्र की लग्न पर पूर्ण दृष्टि है तथा चन्द्रमा की भी शुक्र पर पूर्ण दृष्टि है। अतः यहाँ पूर्वोक्त योगों में द्वितीय योग पूर्णरूपेण घटता है। इस स्थिति को देखकर सम्पन्न एवं कुलीन परिवार की सुन्दर कन्या से विवाह होगा यह फलादेश किया गया।

एक सुशिक्षित किन्तु बेरोजगार युवक ने वृष लग्न में नौकरी का प्रश्न किया। उसकी प्रश्न कुण्डली इस प्रकार है :

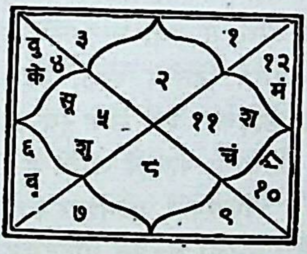

इस कुण्डली में लग्नेश शुक्र और कार्येश शनि की परस्पर दृष्टि है तथा चन्द्रमा की शुक्र पर पूर्ण दृष्टि है। यहाँ तृतीय योग के अनुसार अच्छे पद पर शीघ्र सरकारी नौकरी लगने का फल बतलाया गया, जो परीक्षा की कसौटी पर खरा उतरा।

ग्रन्थकार ने अपने दीघकालीन अनुभव और शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर कार्यसिद्धि के इन ३ योगों का प्रतिपादन किया है। इन योगों के आधार पर फलादेश में एक विलक्षण चमत्कार आ जाता है।

दशमतृतीये नवपञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च।
पश्यन्ति पादवृद्धया फलानि चैवं प्रयच्छन्ति॥
पूर्णं पश्यतिरविजस्तृतीयदशमेत्रिकोणमपि जीवः।
चतुरस्रं भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रञ्च॥६२॥

अर्थात् (समस्त ग्रह अपने स्थान से) तृतीय और दशम, नवम और पञ्चम; चतुर्थ और अष्टम तथा सप्तम स्थान को चरणवृद्धि से देखते हैं और इसी प्रकार फल भी देते हैं। (किन्तु) शनि तृतीय और दशम स्थान को, गुरु पञ्चम और नवमस्थान को, मंगल चतुर्थ और अष्टम स्थान को तथा शुक्र, सूर्य, बुध और चन्द्रमा सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

भाष्य : प्रथम श्लोक में ग्रहों की पाद दृष्टि का वर्णन किया गया है और द्वितीय में पूर्ण दृष्टि का। वस्तुतः यह वराहमिहिर का मत है। सब ग्रह अपने स्थान से तृतीय और दशम स्थान को एक पाद दृष्टि से, नवम और पंचम स्थान को द्विपाद दृष्टि से, चतुर्थ और अष्टम स्थान को त्रिपाद दृष्टि से तथा सप्तमस्थान को पूर्णदृष्टि से देखते हैं। इस तरह प्रथम, द्वितीय, षष्ठ, एकादश एवं द्वादश इन पाँच स्थानों को छोड़कर शेष सात स्थानों पर ग्रहों की किसी न किसी प्रकार की दृष्टि पड़ ही जाती है। किन्तु यह मत सर्वसम्मत नहीं है। विशेषकर प्रश्नशास्त्र के आचार्यों ने पूर्णदृष्टि को ही माना है। उनका बहुमत पाददृष्टि को स्वीकार करने के विरुद्ध है।

सभी ग्रह अपने स्थान से सप्तम स्थान को देखते हैं। किन्तु शनि सप्तम स्थान के अतिरिक्त तृतीय और दशम को, गुरु पञ्चम और नवम को तथा मंगल चतुर्थ और अष्टम स्थान को भी देखता है। प्रश्नशास्त्र के आचार्यों ने दृष्टि के सम्बन्ध में

इसी मत पर अपनी मान्यता की मुहर लगाई है। वस्तुतः इस मत से किसी आचार्य का विरोध नहीं है, सभी ने इसे पूर्णरूपेण स्वीकार किया है। सम्प्रति दृष्टि के विचार में यही मत प्रचलित भी है। इसके अनुसार मंगल, गुरु और शनि तीन-तीन स्थानों को तथा शेष ग्रह एकमात्र सप्तम स्थान को देखते हैं। मूलतः यह मत महर्षि पाराशर का है।[१]

दृष्टि का अर्थ देखना एवं ध्यान देना दोनों ही हैं। दृष्टि एवं प्रकाश रश्मि सरल रेखाकार धरातल में चलती है।[२] सरल रेखा १८० अंश का कोण बनाती हुई चलती है। अतः दर्शक और दृश्य के मध्य १८० अंश या छः राशि का अन्तर होना सिद्ध होता है। चूंकि छः राशि के अन्तर पर सप्तम भाव होता है। अतः ग्रहों की अपने स्थान से सातवें स्थान पर दृष्टि पड़ना स्वाभाविक है। सप्तम स्थान पर दृष्टि पड़ने के सम्बन्ध में कुछ विद्वान् एक और रोचक तर्क देते हैं। उनका कथन है कि सप्तम स्थान स्त्री-स्थान है या स्त्री की कुण्डली में पति-स्थान है। स्त्री-पुरूष का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण प्रकृति का नियम है अतः स्त्री के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण सभी ग्रह सप्तम स्थान को देखते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का अपने कर्तव्य की ओर ध्यान या अवधान

१. पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजापुनः ।
विशेषतस्त्रिदशत्रिकोणश्चतुरष्टमान् ॥
लघुपारा अ० १ श्लो० ४

२. दृष्टिसूत्रं किरणसूत्रं वा सरलमार्गेण व्रजति।
विस्तृत जानकारी के लिए देखिये—
सिद्धन्ततत्त्वविवेक—बिम्बाधिकार

सदैव रहता है। कारकत्व की दृष्टि से शनि भृत्य ग्रह है। भृत्य का कर्तव्य उद्योग, पराक्रम एवं प्रयत्न करना तथा स्वामी और उसकी आज्ञा का ध्यान रखना प्रमुख है। अतः इनके प्रतिनिधि तृतीय और दशम भाव को शनि देखता है। वृहस्पति को गुरु कहा गया है। गुरु का प्रधान कर्तव्य शिष्य को विद्वान् एवं धार्मिक वनाना है। इसलिए विद्या और धर्म के प्रतिनिधि भाव पञ्चम और नवम को वृहस्पति देखता है। इसी प्रकार मंगल को सेनापति कहा गया है। सेनापति का मुख्य कर्तव्य है देश की बाह्य एवं आन्तरिक संकटों से रक्षा करते हुए सुख, शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना। फलतः इनके प्रतिनिधि भावों चतुर्थ और अष्टम पर उसकी दृष्टि रहती है। शेष ग्रह सूर्य और चन्द्रमा राजा हैं, बुध युवराज एवं शुक्र मन्त्री है। इनका विशेष दायित्व न होने के कारण ये स्वाभाविक रूप से सप्तम स्थान को देखते हैं।

॥ ग्रहाणां दृष्टिचक्रम् ॥

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.	ग्रह
७	७	४ ७ ८	७	५ ७ ९	७	३ ७ १०	७	७	दृष्टि स्थान

कथयन्ति पादयोगं पश्यति सौम्यो न लग्नपो लग्नम्।
लग्नाधिपश्च पश्यति शुभ ग्रहो नार्धयोगञ्च ॥६३॥

एकः शुभग्रहो यदि पश्यति लग्नाधिपो विलोकयति।
पादोन योगमाहुस्तदा बुधाः कार्यसिद्धये ॥६४॥
लग्नपति दर्शने सति शुभ ग्रहौ द्वौ त्रयोऽथवा लग्नम्।
पश्यन्ति यदि तदानीमाहुर्योगं त्रिभागोनम् ॥६५॥
क्रूरावक्षणवर्जाश्चत्वारः सौम्यखेचराः लग्नम्।
लग्नेशदर्शने सति पश्यन्ति पूर्णयोगकराः ॥६६॥

अर्थात् शुभ ग्रह लग्न को देखे किन्तु लग्नेश लग्न को न देखें तो पाद (१/४) योग कहते हैं। और लग्नेश लग्न को देखे परन्तु शुभ ग्रह न देखे तो अर्ध (१/२) योग होता है। यदि एक शुभ ग्रह और लग्नेश लग्न को देखें तो कार्यसिद्धि के लिए पादोन (३/४) योग विद्वानों ने कहा है। लग्नेश की लग्न पर दृष्टि होने के साथ दो या तीन शुभ ग्रह लग्न को देखते हों तो त्रिभागोन (१६/२०) योग कहा जाता है और पाप ग्रहों की दृष्टि को छोड़कर चारों शुभ ग्रह लग्न को देखते हों, तथा लग्नेश की लग्न पर दृष्टि हो, तो पूर्ण योग होता है।

भाष्य : ग्रन्थकार ने श्लोक ४२ में चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र को शुभ ग्रह तथा सूर्य, मंगल, शनि और राहु को पाप ग्रह माना है। यद्यपि चन्द्रमा और बुध को सदैव शुभ ग्रह मानना अन्य आचार्यों को अभिप्रेत नहीं है, जैसा कि हमने उक्त श्लोक के भाष्य में स्पष्ट किया है। तथापि ग्रह दृष्टि से योगफल के न्यूनाधिकत्व-निर्णय के इस प्रसंग में ग्रन्थकार का मत स्पष्ट रूप से पाठकों के सम्मुख रखने के लिए उन्हीं के मतानुसार व्याख्या कर रहे हैं।

यहां लग्नेश एवं शुभ ग्रहों की लग्न पर दृष्टि के अनुसार फल में न्यूनाधिकता की कल्पना की गई है। ग्रन्थकार का अपना

मत यह है कि यदि लग्न पर केवल शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो कार्यसिद्धि (फल) की मात्रा १ पाद या २५ प्रतिशत माननी चाहिए। शुभ ग्रह की अपेक्षा लग्नेश की लग्न पर दृष्टि (सामान्यतया भावेश की भाव पर दृष्टि) अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि शुभ ग्रह और भावेश दोनों ही फल की वृद्धि करते हैं किन्तु शुभ ग्रह की अपेक्षा भावेश फल को अधिक पुष्ट करता है। अतः लग्नेश की लग्न पर दृष्टि मात्र से कार्यसिद्धि (फल) की मात्रा २ पाद या ५० प्रतिशत हो जाती है। वस्तुतः दृष्टि के माध्यम से फल में तारतम्य प्रस्तुत करने का ग्रन्थकार का यह सर्वथा नवीन एवं मौलिक प्रयास है। पूर्ववर्ती आचार्य शुभ ग्रह एवं भावेश की दृष्टि के प्रभाव से परिचित अवश्य थे, किन्तु वे उसे इतने स्पष्ट रूप में नहीं कह सके, जितना स्पष्ट एवं निःशंक होकर आचार्य पद्मप्रभु सूरि ने कहा है।

'यदि लग्न पर लग्नेश और एक शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो कार्य सिद्धि की मात्रा पादोन (३/४) या ७५ प्रतिशत माननी चाहिए।' ग्रन्थकार का यह कथन युक्ति संगत है। क्योंकि लग्न का एक शुभ ग्रह की दृष्टि से फल की मात्रा १ पाद (१/४) और लग्नेश की दृष्टि से फल की मात्रा २ पाद (१/२) मानी गयी है। इन दोनों का योग पादोन (३/४) या ७५ प्रतिशत सिद्ध होता है।

यदि लग्न पर लग्नेश और २ या ३ शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो फल त्रिभागोन माना गया है। प्राचीन काल में एक भाग का तात्पर्य एक विंशोपक माना जाता था। अतः त्रिभागोन का अर्थ १७ विंशोपक (१७/२०) या ८५ प्रतिशत सिद्ध होता है। इस प्रकार शुभ ग्रहों की संख्या में वृद्धि से फल की

मात्रा में वृद्धि की कल्पना की गई हैं। कुल शुभ ग्रहों की संख्या ग्रन्थकार के अनुसार चार है। अतः यदि लग्न को लग्नेश तथा चारों शुभ ग्रह देखते हों तो योग या फल की मात्रा पूरी माननी चाहिए।

श्लोक ६५ एवं ६६ में योग या फल की मात्रा त्रिभागोन एवं पूर्ण शुभ ग्रहों की संख्या चार मानकर ग्रन्थकार ने निर्धारित की है। किन्तु बुध और चन्द्रमा परिस्थितिवश पाप ग्रह भी होते हैं ज्योतिषशास्त्र के अधिकांश आचार्य प्रायः इस मत से सहमत हैं।[1] अतः हमारा मत यह है कि लग्न पर लग्नेश तथा दो या अधिक ग्रहों की दृष्टि होने पर फल या योग को पूर्ण माननी चाहिए न कि त्रिभागोन। मैं एक अन्य बात की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। वह है लग्न पर लग्नेश तथा चार शुभ ग्रहों की दृष्टि होने पर पूर्ण फल की कल्पना। यदि लग्न को देखने वाले इन चार ग्रहों में से दो ग्रह चन्द्रमा और बुध परिस्थितिवश पाप हो, तो क्या फल और योग पूर्ण होगा ? क्योंकि मूलश्लोक में ग्रन्थकार ने

१. (i) क्षीणेन्द्व कमहीसुतार्कतनयाः पापाः बुधस्तैर्युतः।

वराह मिहिर

(ii) शशिजोऽशुभसंयुक्तः क्षीणश्च निशाकरः पापः।

—कल्याण वर्मा

(iii) क्षीणेन्द्वर्क कुजाहिकेतुरविजाः पापः सपापश्च वित्।

—मन्त्रेश्वर

(iv) क्रूरग्रहाः कुजदिवाकरसूर्यसूतुक्षीणेन्दव सहित तैस्तु तथा बुधः स्यात्। —गुणाकर

'क्रूरावेक्षणवर्जा:' इस शर्त द्वारा पूर्णयोग की स्थिति में पाप ग्रहों की दृष्टि का निषेध किया है। अतः इस परिस्थिति में तो पूर्ण फल के स्थान पर फल में ह्रास ही दिखाई देता है। यदि यह कहा जाए कि जब परिस्थितिवश बुध और चन्द्रमा भी शुभ हों, तब लग्न पर लग्नेश और इन चारों की दृष्टि होने पर ही पूर्ण योग एवं फल घटता है तो संयोग वश कदाचित होने वाली यह घटना दुर्लभ-स्थिति बन जावेगी और दैनन्दिन स्थिति में पूर्ण योग या फल की कल्पना असंभव सी हो जावेगी इसलिए हम पूर्ण योग या फल के साथ चार शुभ ग्रहों की दृष्टि वाली अनिवार्य शर्त से सहमत नहीं हैं। मेरी राय में लग्न पर लग्नेश और किन्हीं-किन्हीं शुभ ग्रहों की दृष्टि मात्र से पूर्ण योग एवं फल मानना अधिक तर्क संगत और व्यावहारिक है।

१०. अथ विनष्टग्रह विचार द्वारम्

क्रूराक्रान्तः क्रूरयुतः क्रूरदृष्टस्तु यो ग्रहः।
विरश्मितां प्रपन्नश्च स विनष्टो बुधैः स्मृतः ॥६८॥
क्रूरेण जीयमानो यो राहुपार्श्व यथा रविः।
क्रूराक्रान्तः स विज्ञेयः क्रूरयुक्तः सामेंऽशके ॥६८॥
पूर्णया दृश्यते दृष्ट्या क्रूरदृष्टः स] उच्यते।
प्रविविक्षुः प्रविष्टो वा सूर्यराशौ विरश्मिकः ॥६९॥

अर्थात जो ग्रह क्रूराक्रान्त, क्रूरयुत, क्रूरदृष्ट एवं रश्मियों से रहित हो उसे विद्वान विनष्ट संज्ञक कहते है। जो ग्रह क्रूर ग्रह से पराजित हो, जैसे राहु के साथ (ग्रहण में) रवि, उसे क्रूराक्रान्त कहते हैं। क्रूर के युक्त ग्रह यदि एक ही नवमांश में हो तो वह क्रूर युक्त कहलाता है। जिस ग्रह को क्रूर ग्रह पूर्ण दृष्टि

से देखता हो, उसे क्रूर दृष्ट कहते हैं। सूर्य की राशि में प्रवेश करने की इच्छा वाला या प्रविष्ट हुआ ग्रह विरश्मि कहा जाता है।

भाष्य : यहां 'विनष्ट' ग्रह का लक्षण निरुपित किया गया है। कोई भी ग्रह जब क्रूराक्रान्त, क्रूरयुत क्रूरदृष्ट या विरश्मि हो उसे विनष्ट कहते हैं। तात्पर्य यह कि इन चार स्थितियों में से किसी भी स्थिति को प्राप्त कर ग्रह विनष्ट कहलाता है। ग्रन्थकार ने क्रूराक्रान्त आदि स्थितियों की परिभाषा स्वयं दी है।

जब कोई ग्रह ग्रहयुद्ध में क्रूरग्रह से पराजित हो जाता है, तो उसे क्रूराक्रान्त कहते हैं। ग्रहयुद्ध से तात्पर्य दो या अधिक में अत्यन्त निकटता होना है। इन ग्रहों में से जो ग्रह उत्तर की ओर हो तथा अन्य ग्रहों की अपेक्षा प्रखररश्मि वाला हो वह विजयी कहा जाता है और अन्य पराजित। अतः जो ग्रह पाप ग्रह के अत्यन्त निकट हो, उसकी रश्मियों की तुलना में मन्द रश्मिवाला हो तथा पाप ग्रह से दक्षिण की ओर स्थित हो उसे क्रूराक्रान्त जानना चाहिए। राहु और केतु जिस प्रकार ग्रहण की स्थिति में सूर्य और चन्द्रमा के तेज को क्षीण कर देता है उसी प्रकार अन्य ग्रहों से युक्त होकर भी वह उन्हें निस्तेज बना देता है। अतः इन दोनों से युक्त ग्रह भी क्रूराक्रान्त कहा जाता है। अन्य आचार्यों ने क्रूराक्रान्त ग्रह को पीड़ित, निपीड़ित या अतिपीड़ित भी कहा है।

क्रूरयुक्त ग्रह केवल क्रूरग्रह के योग मात्र से नहीं होता। अपितु वह क्रूरग्रह के साथ एक ही नवांश में भी होना चाहिए। नवांश राशि के नौवें भाग को कहते हैं। अतः ३ अंश २०

कला का एक नवांश होता है। नवांश का ज्ञान पृष्ठ ७२ पर दिये चक्र से कर लेना चाहिए।

जिस ग्रह पर क्रूरग्रह की पूर्ण दृष्टि हो वह क्रूर दृष्ट कहा जाता है। राहू और केतु को छोड़कर अन्य ग्रह सूर्य साथ होने पर निस्तेज या अस्त हो जाते हैं। सूर्य की प्रखर किरणों के प्रभाव से जैसे दिन में तारागण दिखलाई नहीं देते, वैसे ही निश्चित अंशों के दूरी से सूर्य के साथ रहने वाले ग्रह भी तेज रहित होकर अस्त हो जाते हैं। सूर्य एवं ग्रहों की इस निश्चित दूरी को कालांश कहते हैं। विभिन्न ग्रहों के बिम्ब मान एवं उनमें तेज की मात्रा भिन्न-भिन्न होने के कारण उनके कालांश भी भिन्न कहे गए हैं। चन्द्रादि ग्रहों के कालांश क्रमशः १२°, १७°, १४°, १२°, ११° एवं १०° अंश हैं। इसलिए सूर्य की राशि में स्थित ग्रह ही नहीं, अपितु सूर्य से अगली या पिछली राशि में भी कालांश तुल्य अन्तर पर स्थित ग्रह अस्त हो जाता है। ऐसे ग्रह को ही ग्रन्थकार ने 'विरश्मि' कहा है।

लग्नाधिपे विनष्टे स्याद्विनष्टावयवः पुमान।
विनष्टजातिवर्णशच शुभाकारो विपर्यये ॥७०॥
एवं धनादिस्थानेषु विनष्टेऽधिपतौ वदेत्।
धन भाव भ्रातृ भाव प्रमुखान् प्रत्यान् सुधी ॥७१॥

अर्थात लग्नेश के विनष्ट होने पर मनुष्य के अंग, जाति एवं वर्ण आदि विनष्ट होते हैं। यदि विपरीत (स्थिति) हो तो आकार शुभ होता है। इसी प्रकार धन आदि भावों के स्वामी के विनष्ट होने पर धन, भ्रातृ आदि भावों का फल विद्वानों को कहना चाहिए।

भाष्य : इन श्लोकों में ग्रन्थकार ने तन्वादि द्वादश भावों

के स्वामी के विनष्ट होने पर भावों के फल का दिग्दर्शन कराया है। जिस भाव का स्वामी विनष्ट होता है उस भाव से सम्बन्धित विषयों में उपद्रव, अवरोध या नाश जैसा अशुभ फल कहना चाहिए। जैसे यदि लग्नेश विनष्ट ग्रह हो तो लग्न से विचारणीय विषयों···अंग, जाति, वर्ण आदि पर अशुभ प्रभाव कहना चाहिए। इस स्थिति में शरीर रोग युक्त, अंग-हीन, कुरूप, कान्तिरहित एवं म्लेच्छादि जाति के लोगों जैसा हो सकता है। इसी प्रकार धन, भ्रातृ आदि भावों के स्वामी ग्रह के विनष्ट होने पर उन भावों के विचारणीय विषयों पर अशुभ प्रभाव की कल्पना विद्वानों को स्वयं कर लेनी चाहिए।

भावेशों के विनिष्ट होने पर जो फल बार-बार अनुभव में आया है, वह पाठकों की जानकारी के लिए लिखा जा रहा है। यदि लग्नेश विनष्ट हो तो व्यक्ति प्राय दुर्बल होता है और उसका कद छोटा होता है। धनेश के विनष्ट होने पर बचत नहीं हो पाती। तृतीयेश के विनष्ट होने पर व्यक्ति आलसी होता है और भाई से उसका मतभेद रहता है। चतुर्थेश विनष्ट हो तो आजीवन किराये के मकान में रहता है। पञ्चमेश के विनष्ट होने पर गर्भपात तथा पुत्र से मतभेद और सप्तमेश के विनष्ट होने पर पत्नी से मतभेद या सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) होजाता है। भाग्येश विनष्ट हो तो प्रगति में बाधायें और दशमेश विनष्ट हो तो व्यवसाय में कई बार परिवर्तन होता है। लाभेश के विनष्ट होने पर आर्थिक स्थिति डावांडोल और व्ययेश के विनष्ट होने पर रहन सहन का स्तर निम्नतर होता है। यह फल हमने विनष्ट ग्रह के न्यूनतम अशुभ प्रभाव के आधार पर अनुभव किया है।

।। नवांश ज्ञान चक्र ।।

अंश	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
३/२०	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.
६४/०	वृ.	कु.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कु	वृ.	सिं
१०/०	मि.	मी.	ध.	कं.	मि.	मी.	ध.	कं.	मि.	मी.	ध.	कं.
१३/२०	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.
१६/४०	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कु.	वृ.
२०/०	कं.	मि.	मी.	ध.	कं.	मि.	मी.	ध.	कं.	मि.	मी.	ध.
२३/२०	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.
२६/४०	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कु.
३०/०	ध.	कं.	मि.	मी.	ध.	कं.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.

११· अथ राजयोग द्वारम्

> आद्यो लग्नपतिः कार्ये लग्ने कार्याधिपो यदि।
> द्वितीयो लग्नपो लग्ने कार्ये कार्याधिपो भवेत् ॥७२॥
> लग्नपः कार्यपश्चापि लग्ने यदि तृतीयकः।
> चतुर्थः कार्यगो स्यातां यदि लग्नपकार्यपौ ॥७३॥
> चतुर्षु तुभयत्रापि चन्द्रदृग्दर्शनं मिथः।
> कार्यसिद्धिस्तदा ज्ञेया मित्रे चेदधिकं शुभम् ॥७४॥

अर्थात लग्नेश कार्यभाव में और कार्येश लग्न में हो तो प्रथम योग; लग्नेश लग्न में और कार्येश कार्य भाव में हो तो द्वितीय योग; लग्नेश और कार्येश लग्न में हों तो तृतीय योग; तथा लग्नेश और कार्येश दोनों कार्य भाव में हों तो चतुर्थ योग (होता है)। किन्तु इन चारों योगों में परस्पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो कार्य सिद्धि जाननी चाहिए। यदि चन्द्रमा मित्र-राशि आदि में हो तो अधिक शुभ फल होता है।

भाष्य : पहले श्लोक ६० तथा ६१ में लग्नेश और कार्येश के दृष्टि सम्बन्ध के आधार पर कार्यसिद्धि के ३ योगों का वर्णन किया गया है। यहां लग्नेश और कार्येश के स्थिति सम्बन्ध के आधार पर ४ राजयोगों का विवेचन किया जा रहा है। ग्रन्थ-कार की यह कल्पना पाराशर की सम्बन्ध चतुष्टय और उनके आधार पर राजयोग की परिकल्पना से पर्याप्त मात्रा में साम्य रखती है। महर्षि पाराशर ने सर्वप्रथम सम्बन्ध चतुष्टय का विचार किया था। ये चार सम्बन्ध हैं : १. दृष्टि सम्बन्ध, २. स्थान सम्बन्ध, ३. युति सम्बन्ध एवं ४. एकान्तर सम्बन्ध।

ग्रन्थकार ने एकान्तर सम्बन्ध को छोड़ कर शेष ३ संबंधों

को ग्रहण किया है। तथा इनमें से दृष्टि सम्बन्ध के आधार पर कार्य सिद्धि योग तथा स्थान एवं युति सम्बन्ध के आधार पर राज योगों का निरूपण किया है। यहां राज योग शब्द भी पाराशर के 'विशेष फलदायक' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि कार्येश प्रश्न की प्रकृति अनुसार राज्येश भाग्येश, धनेश, सुखेश, पुत्रेश या रोगेश आदि में से कोई भी हो सकता है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह राज्य या भाग्य भाव का ही प्रतिनिधित्व करे।

उक्त चार राजयोगों से पहले दो योग स्थान सम्बन्ध के आधार पर और अन्तिम दो योग युति सम्बन्ध के आधार पर बनते हैं। इन योगों में विशेष बात यह कि योगकारक ग्रहों पर चन्द्रमा की दृष्टि अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। उक्त योग क्रमशः इस प्रकार हैं :

प्रथम योग : लग्नेश कार्यभाव में और कार्येश लग्न भाव में हो तथा इनमें से किसी पर चन्द्रमा की दृष्टि हो।

द्वितीय योग : लग्नेश लग्न में और कार्येश कार्य भाव में स्थित हो तथा इनमें से किसी पर चन्द्रमा की दृष्टि हो।

तृतीय योग : लग्नेश और कार्येश दोनों लग्न में और चन्द्रमा इन्हें देखता हो।

चतुर्थ योग : लग्नेश और कार्येश दोनों कार्य भाव में हों, तथा चन्द्रमा इन्हें देखता हो।

कार्य सिद्धि का बीज होने के कारण चन्द्रमा का विशेष महत्व है।[1] इसी कारण से इन योगों में चन्द्रमा की दृष्टि

१. देखिये—श्लोक ६०.

अनिवार्य शर्त के रूप में मानी गयी है। यदि चन्द्रमा मित्र राशि, मूल त्रिकोण राशि, उच्च राशि या स्व राशि में स्थित होकर बलवान हो तो योग के शुभ प्रभाव में वृद्धि करता है।

विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित कुण्डलियां दी जा रही हैं :

किसी ने सिंह लग्न में भाग्य सम्बन्धी प्रश्न किया। तात्कालिक ग्रह स्थिति के अनुसार कुण्डली इस प्रकार है :

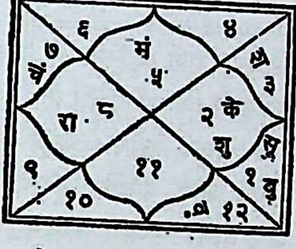

प्रथम योग : इस कुण्डली में लग्नेश सूर्य कार्य भाव (भाग्य भाव) में उच्च राशि में स्थित है और कार्येश मंगल लग्न में सिंह राशि में बैठा है तथा लग्नेश सूर्य पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि भी है। अतः यहां प्रथम योग पूर्णरूपेण बनता है। फलतः भाग्य वृद्धि अवश्य होगी।

किसी अन्य व्यक्ति ने मीन लग्न में मकान से सम्बन्धित प्रश्न किया। उस समय की ग्रह स्थिति के आधार पर निम्नलिखित कुण्डली बनी :

द्वितीय योग : यहां लग्नेश गुरु लग्न में तथा कार्येश बुध कार्यभाव (चतुर्थ) में स्थित है। बुध पर चन्द्रमा की पूर्णदृष्टि भी है। इसलिए यहां द्वितीय योग पूरा-पूरा घट रहा है। परिणामतः

भूमि की प्राप्ति एवं मकान का निर्माण निश्चित रूप से होगा।

एक सज्जन ने वृषभ लग्न में सन्तान सम्बन्धी प्रश्न पूछा, जिसकी कुण्डली निम्नलिखित है :

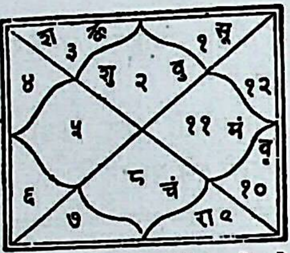

तृतीय योग : यहां लग्नेश शुक्र और कार्येश पंचमेश बुध दोनों लग्न में स्थित हैं। इन पर चन्द्रमा की दृष्टि भी है। अतः शीघ्र सन्तति होने का योग है।

कन्या के विवाह की चिन्ता से युक्त एक व्यक्ति ने मेष लग्न में प्रश्न किया। उसकी कुण्डली निम्नलिखित है :

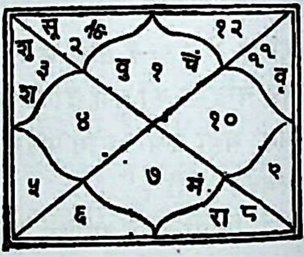

चतुर्थ योग : यहां लग्नेश मंगल और कार्येश (सप्तमेश) शुक्र दोनों सप्तम स्थान में बैठे हैं। इन पर मित्र राशि गत चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि है। अतः अच्छे परिवार में सुयोग्य वर के साथ शीघ्र विवाह होगा यह फलादेश करना चाहिए।

चन्द्रदृष्टिं विनाऽन्यस्य शुभस्य यदि दृग्भवेत्।
शुभं प्रयोजनं किंचिदन्यदुत्पद्यते तदा ॥७५॥

अर्थात् चन्द्रमा की दृष्टि के बिना यदि किसी अन्य शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो कोई अन्य प्रयोजन उत्पन्न होता है।

भाष्य : पूर्वोक्त चार योगों में योगकारक ग्रहों पर चन्द्रमा की दृष्टि अनिवार्य शर्त के रूप में मानी गयी है। क्योंकि

चन्द्रमा कार्य सिद्धि का बीज होने के कारण अपना विशेष महत्व रखता है। यदि किसी समय प्रश्न कुण्डली में लग्नेश और कार्येश का स्थान सम्बन्ध तो हो किन्तु उन पर चन्द्रमा की दृष्टि न होकर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो प्रश्नकर्ता के मन में जिस कार्य का विचार है; उसकी सिद्धि न होकर किसी अन्य कार्य की सिद्धि होती है। उदाहरणार्थ, वृषभ लग्न में सन्तति सम्बन्धी प्रश्न पूछने के समय की यह कुण्डली है :—

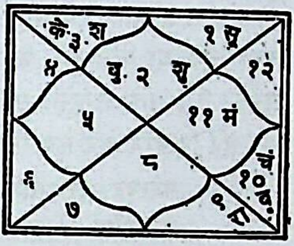

यहां लग्नेश शुक्र और कार्येश (पंचमेश) बुध दोनों साथ-साथ लग्न में स्थित हैं। इन पर चन्द्रमा की दृष्टि न होकर गुरु की पंचम दृष्टि है। अतः इस स्थिति में कहना चाहिए कि प्रश्नकर्ता को शीघ्र सन्तति लाभ नहीं होगा। किन्तु बुध धनेश भी है। अतः उसे अचानक किसी नई योजना के द्वारा धन लाभ अवश्य होगा।

राजयोगा अमी ख्याता श्चत्वारोऽपि महाबलाः।
अत्रैव दृष्टियोगेन सामान्येन फलं स्मृतम् ॥७६॥

अर्थात ये चारों अत्यन्त बलवान राजयोग प्रसिद्ध हैं। इन पर (अन्य ग्रहों की) दृष्टि और योग सामान्य रीति से फल कहा गया है।

भाष्य : ग्रन्थकार ने इन सुप्रसिद्ध एवं अत्यन्त बलवान राजयोगों का व्याख्यान किया है। किन्तु इन पर शुभ एवं पाप ग्रहों की दृष्टि और युति का फल विद्वानों को सामान्य रीति से स्वयं विचार कर लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यदि लग्नेश

या कार्येश की शुभ ग्रह के साथ युति हो तो शुभ फल और पापग्रह के साथ युति हो तो पाप फल की कल्पना कर लेनी चाहिए। इसी प्रकार लग्नेश या कार्येश पर शुभ ग्रह की दृष्टि होने पर शुभ फल तथा पाप ग्रह की दृष्टि होने पर पाप फल का विचार भी फलादेश से पूर्व विद्वानों को स्वयं कर लेना चाहिए। कारण यह है कि शुभ एवं पाप ग्रहों की दृष्टि या युति का फल सुप्रसिद्ध एवं सामान्यतया सभी को ज्ञात होने के कारण ग्रन्थकार ने यहां स्वयं विवेचित नहीं किया है। किन्तु इस दृष्टि या युति का भी फल पर आवश्यक रूप से प्रभाव पड़ना है। अतः उन्होंने सलाह दी है कि इस दृष्टि और योग का भी विचार कर तब निष्कर्ष रूप में विद्वान फलादेश करें।

परस्पर दृष्टिमात्रेण अर्धयोगं विनिर्दिशेत्।
चन्द्रदृष्टिं विना ज्ञेयं शुभं पादफलं बुधैः ॥७७॥

अर्थात् केवल परस्पर दृष्टि से अर्धयोग कहना चाहिए (तथा) चन्द्रमा की दृष्टि के बिना विद्वान (राजयोग का) शुभ फल एक पाद (१/४) कहें।

भाष्य : लग्नेश एवं कार्येश में स्थान या युति सम्बन्ध होने पर राजयोग होता है। यदि इन दोनों में उक्त सम्बन्ध न होकर दृष्टि सम्बन्ध हो तो अर्धयोग मानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि लग्नेश और कार्येश की परस्पर दृष्टिमात्र होने से योग आधा बनता है। परिणामतः इसका फल भी राजयोग की तुलना में आधा ही कहना चाहिए। इस दृष्टि सम्बन्ध के होने पर भी कार्य सिद्धि अवश्य होती है। किन्तु अन्तर इतना ही है कि राजयोग होने पर कार्य की सिद्धि सम्मान पूर्वक एवं अल्प प्रयास से होती है जब कि इस योग में पूरा प्रयास करने पर कार्य की

सिद्धि होती है।

यदि लग्नेश और कार्येश राजयोगोक्त रीति से परस्पर सम्बन्ध रखते हों, किन्तु इन पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो तो राजयोग का शुभ फल मात्र १ पाद (२५ प्रतिशत) मानना चाहिए प्रश्नकुण्डली में चन्द्रमा सिद्धि का बीज है। वह व्यक्ति के मनोयोग और मनोबल का भी परिचायक है। अत: जब योगकारक ग्रहों पर चन्द्रमा की दृष्टि होती है, तो व्यक्ति पूर्ण मनोयोग के साथ सुनिश्चित रीति से प्रयास करता हुआ सरलता से कार्यंसिद्ध कर लेता है। किन्तु चन्द्रमा की दृष्टि न होने पर उसका मनोयोग और मनोबल उतना नहीं रहता। फलत: उसे विरोध और विलम्ब आदि का सामना करना पड़ता है। और कार्य का परिणाम भी आंशिक रूप में उसे मिलता है। उदाहरणार्थ, मकान के प्रश्न से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रश्नकुण्डली देखिये :

यहां लग्नेश गुरु लग्न में तथा कार्येश (चतुर्थेश) बुध चतुर्थ स्थान में स्थित है। किन्तु इन दोनों पर चन्द्रमा की दृष्टि नहीं है अत: इस स्थिति में प्रश्नकर्ता से कहना चाहिए कि उसे भूमि एवं मकान निर्माण में अनेक कठिनाइयां आवेंगी किन्तु इनके बावजूद भी प्रयास करने पर मकान का कार्य पूर्ण होगा।

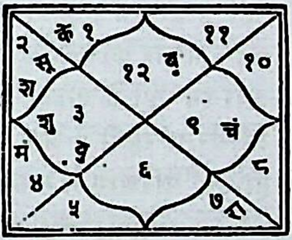

परस्परं विषमता चन्द्रयोगो भवेदादि।
तदाऽर्धफलमादिष्टं प्रपञ्चोऽयं मतो मम ॥७८॥

अर्थात् (लग्नेश और कार्येश में) परस्पर शत्रुता होने पर भी यदि वे चन्द्रमा से युक्त हों तो आधा फल कहा गया है। यह

प्रपञ्च मेरे (ग्रन्थकार) के मतानुसार है।

भाष्य : ग्रन्थकार का कहना है कि राजयोग के कारक ग्रह लग्नेश और कार्येश परस्पर नैसर्गिक दृष्टि से शत्रु हों; किन्तु यदि वे चन्द्रमा से युक्त हों तो राजयोग की तुलना में आधा फल देते हैं। ग्रन्थकार की यह कल्पना भी पाराशर की कारकत्व की कल्पना से अधिकांशतया समानता रखती है। क्योंकि पाराशर ने नीच राशिगत, शत्रुराशिगत आदि दोषों से युक्त केन्द्रत्रिकोण के स्वामियों में सम्बन्ध मात्र होने से उन्हें राजयोग कारक माना है। ग्रन्थकार का यहां आधा फल मानने में सम्भवतः यह हेतु रहा होगा कि इस स्थिति में लग्नेश और कार्येश कुछ निर्बल हैं तथा उन पर चन्द्रमा की दृष्टि न होकर उनका चन्द्रमा के साथ योगमात्र है। अतः योग कारक ग्रहों के निर्बल तथा योग पूरा न बनने के कारण फल भी आधा मानना चाहिए, अस्तु।

किन्तु इस विषय में हमारा मत यह है कि दो नैसर्गिक शत्रु ग्रहों के सम्बन्ध से बनने वाले इस योग के प्रभाववश व्यक्ति को अनेक प्रकार की रुकावटों और मतभेदों का सामना करना पड़ेगा तथा इन ग्रहों से चन्द्रमा के योग के कारण उसके मन में भी अस्थिरता रहेगी। अतः परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने पर ही उसे परिणाम में सफलता मिलेगी। उदाहरणार्थ, व्यवसाय-सम्बन्धी एक प्रश्न की कुण्डली देखिये

यहां लग्नेश बुध और कार्येश (दशमेश) गुरु दोनों कार्यस्थान में चन्द्रमा के साथ हैं। ये दोनों नैसर्गिक शत्रु हैं। अतः नवीन व्यवसाय शुरू करने में अनेक

रुकावटें आयेंगी तथा दैनिक कार्यों में झगड़े रहेंगे। किन्तु इन सबके बावजूद भी लाभ होगा।

१२. अथ लाभालाभादि द्वारम्

लग्नेशो वीक्षते लग्नं कार्येशः कार्यमीक्षते।
कार्यसिद्धिर्भवेदिन्दुः कार्यमेति परं यदा ॥७६॥

अर्थात् लग्नेश लग्न को और कार्येश कार्यभाव को देखता हो तो जब चन्द्रमा कार्यस्थान पर आता है तब कार्य की सिद्धि होती है।

भाष्य : कार्यसिद्धि के योगों के विचार के प्रसंग में श्लोक ६० में यह बतलाया जा चुका है कि लग्नेश लग्न को और कार्येश कार्य स्थान को देखे तथा इनसे चन्द्रमा का सम्बन्ध हो तो कार्य-सिद्धि होती है। यदि लग्नेश लग्न को और कार्येश कार्य स्थान को तो देखें; किन्तु चन्द्रमा का इनके साथ उस समय सम्बन्ध न हो, तो इस स्थिति में गोचरीय चार के क्रम से जब चन्द्रमा कार्य स्थान पर आता है तब कार्येश के साथ दृष्टि सम्बन्ध या स्थान सम्बन्ध हो जाता है। और तब कार्यसिद्धि का पूर्णयोग बनने के कारण कार्य सिद्धि हो जावेगी। इस का उपयोग यह है कि इस रीति से कार्यसिद्धि की अवधि का निश्चित ज्ञान कर सकते हैं।

चन्द्रमा मध्यम मान से २/१/४ दिन में एक राशि और लगभग २७ दिन में राशि चक्र का एक चक्कर पूरा कर लेता है। अतःइस योग में अधिकतम कार्य की सिद्धि २७ दिन हो सकती है। इसलिए तात्कालिक प्रश्नों में इस रीति का प्रयोग करना चाहिए। चन्द्रमा के मध्यम मान से दिन गणना करने की अपेक्षा यदि पञ्चाग के माध्यम से सम्बन्धित राशि में चन्द्रमा का संचार

देखकर दिन गणना कर अवधि का निश्चय किया जाए तो यह दिन संख्या या अवधि अधिक सूक्ष्म रहेगी।

उदाहरणार्थ, पदोन्नति से सम्बन्धित प्रश्नकाल की निम्नलिखित कुण्डली देखिये :

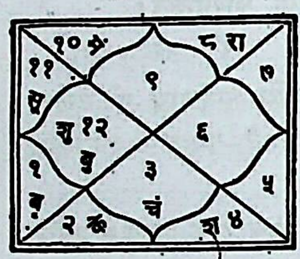

इस कुण्डली में लग्नेश गुरु की लग्न पर और भाग्येश सूर्य की भाग्य पर दृष्टि है। कर्मेश बुध भी अपने स्थान को देख रहा है। किन्तु चन्द्रमा सातवें स्थान में मिथुन राशि में स्थित है। इस ग्रह स्थिति में किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया कि मेरी पदोन्नति का मामला विचाराधीन है। इसका निर्णय कब तक आयेगा। उपर्युक्त ग्रह स्थिति और चन्द्रमा का ६ दिन बाद सिंह राशि में संचार देखकर उसे उत्तर दिया गया कि आपकी पदोन्नति अवश्य होगी और इसका निर्णय आपको छः दिन बाद मिल जावेगा। वस्तुतः परिणाम पूर्णरूपेण सच निकला।

लग्नाधिपतिर्लुब्धो लाभाधीशश्च दायको भवति।
लग्नाधिपस्य योगो लाभाधीशेन लाभकरः ॥८०॥
भवति परं लाभकरस्तदैव यदि भवति चन्द्रदृग्लाभे।
योगाः सर्वेप्यफलाश्चन्द्रमृते व्यक्तमेवैतत् ॥८१॥

अर्थात् लग्नेश लेने वाला और लाभेश देने वाला होता है। लग्नेश का लाभेश के साथ योग लाभकारक होता है। परन्तु यह तभी लाभकारक होता हैं, जब चन्द्रमा की दृष्टि लाभ स्थान पर हो। (क्योंकि) समस्त योग चन्द्रमा की दृष्टि के बिना निष्फल होते हैं, यह स्पष्ट है।

भाष्य : श्लोक ७२-७४ में लग्नेश और कार्येश का योग तथा इन पर चन्द्रमा की दृष्टि होने से कार्यसिद्धिदायक राजयोगों का विचार किया गया है। यहां लाभ सम्वन्धी प्रश्न में इसी तथ्य के आधार पर लाभ योग का विवेचन किया जा रहा है।

लग्नेश प्रश्नकर्ता का प्रतिनिधि होने के कारण लाभ लेने वाला है तथा लाभेश लाभ भाव का प्रतिनिधि होने के कारण लाभ देने वाला ग्रह कहा गया है। लाभ सम्वन्धी प्रश्न में यह कार्यभाव का प्रतिनिधि होने के कारण कार्येश भी है। अत: लग्नेश के साथ लाभेश (कार्येश) का योग होने पर तथा लाभ-भाव (कार्यभाव) पर चन्द्रमा की दृष्टि होने पर अवश्य लाभ होने का योग वनेगा।

लग्नेश एवं लाभेश के योग का अभिप्राय इन दोनों में स्थान-सम्वन्ध या युति-सम्वन्ध होने से है। यह सम्वन्ध ३ स्थितियों में वन सकता है : १. यदि लग्नेश लाभ स्थान में और लाभेश लग्न में स्थित हो, २. लग्नेश और लाभेश दोनों लाभ स्थान में स्थित हों अथवा ३. लग्नेश और लाभेश दोनों लग्न में स्थित हों। इन तीन प्रकार के योगों में किसी एक प्रकार का योग लग्नेश और लाभेश में वनता हो तथा चन्द्रमा का लाभ स्थान से दृष्टि सम्वन्ध हो तो पूर्ण लाभ मानना चाहिए। दैवज्ञ श्री रामकृष्ण ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रश्न चण्डेश्वर में ऐसा ही विवेचन किया है।

समस्त योगों में चन्द्रमा की दृष्टि का विशेष महत्त्व है। क्योंकि चन्द्रमा कार्यसिद्धि का वीज है। यही व्यक्ति के मनोवल और मनोयोग का भी परिचायक है। अत: इसकी दृष्टि के विना सभी योग निष्फल हो जाते हैं।

यहां लाभ का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है। अतः जिस प्रकार अर्थ लाभ के प्रश्न में एकादश (लाभ) भाव के स्वामी के साथ लग्नेश के सम्बन्ध होने पर अर्थ लाभ का विचार किया गया है। उसी प्रकार चतुर्थ स्थान के स्वामी के साथ लाभेश का सम्बन्ध होने पर, भूमि, मकान या वाहन का लाभ; पंचमेश के साथ,सम्बन्ध होने पर सन्तति-लाभ; सप्तमेश के साथ सम्बन्ध होने पर स्त्री-लाभ और दशमेश के साथ सम्बन्ध होने पर पद या उपाधि लाभ का भी विचार किया जाता है।

उक्त योग यदि वर्तमान समय में बनता हो तो सद्यः लाभ होता है। किन्तु यदि भविष्यत् काल में बनने वाला हो तो भविष्यत काल में लाभ होगा। पञ्चांग के माध्यम से लग्नेश और लाभेश का गोचरीय क्रम से योग जान लेना चाहिए। फिर देखना चाहिए कि लाभ स्थान पर चन्द्रमा की दृष्टि किस दिन पड़ रही है। इस रीति से पंचांग की सहायता से यह निश्चय किया जा सकता है कि लाभ अमुक दिन होगा।

इस सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का कहना है कि लग्नेश और लाभेश का योग किसी भी स्थान में हो वह लाभकारक होता है। किन्तु इस विषय में हमारा अनुभव यह है कि इन दोनों का योग जब लग्न या लाभ स्थान में होता है तब शीघ्र एवं प्रचुर मात्रा में लाभ होता है। यदि यह योग षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थान में हो तो लाभ नहीं होता तथा शेष स्थानों में लाभ की मात्रा कुछ कम एवं समय अधिक लगता है। लाभ स्थान से चन्द्रमा का सम्बन्ध होना प्रत्येक स्थिति में अनिवार्य है।

लाभ कब होगा ? यह निश्चय करने के लिए एक उदाहरण देखिये : किसी व्यक्ति ने २३ जून, १९७५ को सिंह लग्न

मेंलाभ विषय का प्रश्न किया। उस समय की ग्रह स्थिति के आधार पर प्रश्नकुण्डली इस प्रकार है :

यहां लग्नेश सूर्य और लाभेश बुध में किसी प्रकार का

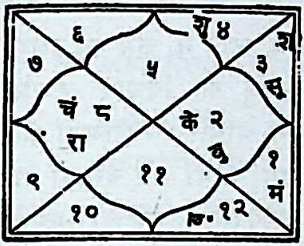

सम्बन्ध नहीं है। न लाभ स्थान पर चन्द्रमा की दृष्टि है। अतः हमने लग्नेश और लाभेश के गोचरीय क्रम से संचार को पञ्चांग के माध्यम से देखना शुरू किया। १६ अगस्त, १९७५ को सूर्य और बुध का योग मिथुन राशि में हुआ तथा १७ अगस्त, १९७५ को चन्द्रमा की दृष्टि लाभ स्थान पर पड़ी उसकी कुण्डली इस प्रकार है :

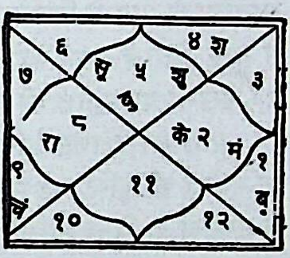

अतः निश्चय किया गया कि प्रश्नकर्ता को दि० १७ अगस्त, १९७५ को लाभ होगा।

पण्याधीशेनैवं कर्मेशेनैव निवृत्यधीशेन।
मृत्युपतिना च योगो लग्नाधीशस्य वक्तव्यः ॥८२॥
तत्तत्स्थानेक्षणतः पण्यविवृद्धिः कर्मवृद्धिश्च।
विबुधैस्तथा निवृत्तिमृत्वो ,भविः परेऽप्येवम् ॥८३॥

अर्थात् इसी तरह पण्याधीश (द्वितीयेश), कर्मेश दशमेश, निवृत्यधीश (सप्तमेश) और मृत्युपति (अष्टमेश) के साथ लग्नेश का योग हो तथा उन स्थानों पर (चन्द्रमा या भावेश

की) दृष्टि हो तो यथाक्रमेण पण्य की वृद्धि, कर्म (राज्य, व्यापार, नौकरी आदि) की वृद्धि, निवृत्ति और मृत्यु होती है--ऐसा विद्वानों को कहना चाहिए। इसी प्रकार अन्य भावों के फल का भी विचार करना चाहिए।

भाष्य : पण्य का विचार द्वितीय भाव से, कर्म का दशम भाव से, निवृर्त्ति का सप्तम से और मृत्यु का विचार अष्टम स्थान से किया जाता है। अतः इन भावों के स्वामियों का लग्नेश के साथ योग होने पर तथा इन भावों पर चन्द्रमा या भावेश की दृष्टि होने पर इन भावों का फल मिलता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार लग्नेश एवं लाभेश का योग लाभ कारक माना गया है उसी प्रकार लग्नेश और धनेश के योग से पण्य वृद्धि; लग्नेश और कर्मेश के योग से कर्म वृद्धि, लग्नेश और सप्तमेश के योग से निवृत्ति तथा लग्नेश और अष्टमेश के योग से मृत्यु होती है। इन ग्रहों के योग के साथ विचारणीय भाव पर चन्द्रमा या भावेश की दृष्टि अवश्य होनी चाहिए।

'तत्तत्स्थानेक्षणतः' इस पद का अर्थ' उन स्थानों पर चन्द्रमा या भावेश की दृष्टि, यह मानना शास्त्रसम्मत है क्योंकि 'चर्न्द्रमा के सम्बन्ध के बिना समस्त योग निष्फल होते हैं' यह पहले ही कहा जा चुका है। साथ ही भाव पर भावेश की दृष्टि होने से भावफल की वृद्धि होती है यह प्रश्नशास्त्रके अधिकांश आचार्यों का मत है। इसीलिए हमने विचारणीय भाव पर चन्द्रमा या भावेश इन दोनों में से किसी एक की दृष्टि होना स्वीकार किया है, अस्तु।

तन्वादि द्वादश भावों में से किसी भी भाव का फल विचार करने का सामान्य नियम यह है कि विचारणीय भाव के स्वामी

और लग्नेश का योग होने पर तथा विचारणीय भाव पर चन्द्रमा या भावेश की दृष्टि पड़ने पर उस भाव का फल मिलता है। इस सामान्य नियम से विद्वान सभी भावों के प्रश्नों का विचार सुगमतापूर्वक कर सकते हैं।

१३. अथ लग्नेशस्थिति द्वारम्

> लग्नेशो यदि षष्ठे स्वयमेव रिपुस्तदा भवत्यात्मा।
> मृत्युकृदष्टमगोऽसौ, व्ययगः सततं व्ययं कुरुते ॥८४॥

अर्थात् यदि लग्नेश षष्ठ स्थान में हो तो व्यक्ति स्वयं अपना शत्रु (कार्यनाशक) होता है। (यदि) यह अष्टम स्थान में हो तो मृत्युकारक और द्वादश स्थान में हो तो सदैव व्यय कराता है।

भाष्य : लग्नेश की त्रिक स्थान में स्थिति का फल विचार करने से पूर्व भावों के शुभाशुभत्व की संक्षिप्त चर्चा कर लेना सर्वथा प्रासंगिक होगा। तन्वादि द्वादश भावों में से लग्न, पंचम और नवम ये तीन भाव श्रेष्ठ, षष्ठ, अष्टम और द्वादश ये तीन भाव नेष्ट तथा शेष छः भाव मध्यम फलदायक माने गये हैं। यह शुभाशुभत्व भावों की प्रकृति और उनके प्रतिनिधित्व के आधार पर किया गया है। चूंकि षष्ठ भाव रोग और शत्रु का, अष्टम भाव मृत्यु और पतन का तथा द्वादश भाव व्यय और हानि का प्रतिनिधि भाव है। अतः इन्हें नेष्ट भाव कहा गया है। किसी भी भाव का स्वामी ग्रह जब छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित हो जाता है, तो वह भाव के फल को नष्ट या विपरीत कर देता है। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र के समस्त आचार्यों ने इन स्थानों को दुःस्थान एवं निषिद्ध स्थान माना है।

इस सर्वमान्य नियम के आधार पर ग्रन्थकार ने लग्नेश की षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश स्थान में स्थिति को अशुभ मानते हुए इसके फल का युक्तियुक्त विचार प्रस्तुत किया है। षष्ठ स्थान शत्रु स्थान कहा गया है। अतः लग्नेश यदि षष्ठ स्थान में स्थित हो, तो व्यक्ति स्वयं अपना शत्रु बन जाता है। अभिप्राय यह है कि इस स्थिति में व्यक्ति अपनी ही गलत हरकतों से अपना कार्य बिगाड़ लेता है। इसी प्रकार अष्टम स्थान मृत्यु स्थान कहा गया है। आत्मा या व्यक्ति का प्रतिनिधि लग्नेश जब इस स्थान में जाएगा, तो मृत्यु होना स्वाभाविक है। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रसंग में 'मृत्यु' शब्द निधन या शरीरान्त के अर्थ में प्रयुक्त न होकर व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः इसका अर्थ नाश, हानि, पतन, अत्यन्त कष्ट या अपमान आदि जानना चाहिए। द्वादश स्थान व्यय भाव कहा गया है अतः लग्नेश यदि इस स्थान में स्थित हो तो व्यय या हानि करता है, यह कहना पूर्णरूपेण तर्क संगत है।

लग्नस्थं चन्द्रजं चन्द्रः क्रूरो वा यदि पश्यति।
धनलाभो भवेदाशु किन्त्वनर्थोऽपि दृश्यते॥८५॥

अर्थात् यदि लग्न में स्थित बुध को चन्द्रमा या पाप ग्रह देखे, तो शीघ्र धन लाभ होता है किन्तु अनर्थ भी दिखलायी पड़ता है।

भाष्य : बुध धन एवं सुवर्णादि का कारक ग्रह है तथा लग्न स्थान स्वभावतः लेने वाला कहा गया है। अतः बुध की लग्न में स्थिति धनादि का लाभ कराती है। साथ ही चन्द्रमा की दृष्टि होने से शीघ्र लाभ का योग बनता है। किन्तु बुध और

चन्द्रमा नैसर्गिक दृष्टि से परस्पर शत्रुता रखते हैं। अतः शत्रु ग्रह की बुध पर दृष्टि होने के कारण अनर्थं उत्पन्न होने की सम्भावना कही गयी है। इसी प्रकार पाप ग्रह की दृष्टि भी पाप फलदायक होने के कारण अनर्थादि पाप फलों को उत्पन्न करने वाली है। इसलिए इस योग में बुध की लग्न में स्थिति के प्रभाव से धनादि लाभ और चन्द्रमा या पाप ग्रह की दृष्टि के प्रभाव से अनर्थ होना पूर्णतः तर्कसंगत है। हमारा अनुभव है कि इस योग में सामान्यतया पहिले धन लाभ और बाद में अकारण उपद्रव, मुकदमा, भय, शोक, अपमान, रोग या मृत्यु जैसे अनर्थ उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित कुण्डली देखिये :

इस कुण्डली में लग्न में स्वराशिगत बुध पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि है। अतः प्रश्नकर्त्ता को लाटरी के द्वारा प्रचुर धन लाभ हुआ। किन्तु एक सप्ताह के बाद स्कूटर दुर्घटना में उसका पैर टूट गया। फलतः आज वह बैशाखी के सहारे चलता है।

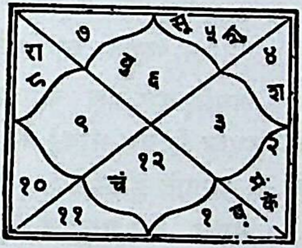

चन्द्रो लग्नपतिर्वा यदि केन्द्रे शुभाः स्थिताः।
किंवदन्ती तदा सत्या स्यादसत्या विपर्यये ॥८६॥

अर्थात् चन्द्रमा, लग्नेश या शुभ ग्रह यदि केन्द्र में स्थित हो तो अफवाह ठीक होती है; यदि विपरीत हो तो असत्य होती है।

भाष्य : किंवदन्ती (अफवाह) सत्य है या झूठ ? यह जानने के लिए ग्रन्थकार ने इस विशेष योग का निरूपण किया है। यदि चन्द्रमा, लग्नेश या शुभग्रह केन्द्र (१, ४, ७ एवं १० स्थान) में

स्थित हों तो अफवाह सत्य होती है। यदि चन्द्रमा और लग्नेश केन्द्र में न हों और पापग्रह केन्द्र में बैठे हों तो अफवाह असत्य होती है। आचार्य नीलकण्ठ ने भी लगभग यही बात कही है। किन्तु उनका यह कथन है कि यदि लग्नेश, चन्द्रमा या शुभ ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति हो तो अफ़वाह सुखद समाचार जैसी होती है और पाप ग्रहों की दृष्टि या युति होने से भय या आतंक फैलाने वाली। उनके मतानुसार यदि लग्नेश निकट भविष्य में वक्री होने वाला हो तो अफवाह निश्चित रूप से झूठी होती है।[१]

१४. अथ गर्भक्षेम द्वारम्

क्षेम प्रश्ने च गर्भस्य गर्भं गर्भाधिपो भवेत्।
न पश्यति ग्रहः क्रूरस्तत्र चापि च्युतिस्तदा ॥८७॥

अर्थात् गर्भ क्षेत्र के प्रश्न में गर्भ का स्वामी (पंचमेश) गर्भ स्थान (पंचम भाव) को न देखे और पाप ग्रह वहां स्थित हो तो गर्भपात होता है।

भाष्य : गर्भ सकुशल रहेगा या गर्भपात होगा? इस प्रश्न के समय यदि कुण्डली में पंचमेश की पंचम स्थान पर दृष्टि न हो और पाप ग्रह पंचम स्थान में स्थित हो तो गर्भपात होता

१. लग्नं लग्नेश्चरशीत गूदयैः शुभान्वितैः केन्द्रगतैस्तु सत्या।
पापान्वितैः पापनिरीक्षितैश्च त्रिकस्थितैर्वा भवतीह मिथ्या ॥
शुभदृग्योगतः सौम्यां वार्ता सत्यां विनिर्दिशेत्।
पापदृग्योगतः दुष्टा वार्ता सत्येति कीर्तिता ॥
लग्नेश्वरे भाविवक्रे मिथ्या वार्ता भविष्यति।
प्रश्नतन्त्र अ-२ श्लो० ७८-७९

हं। कारण स्पष्ट हैं—भावेश की भाव पर दृष्टि भाव फल को पुष्ट करती है। भावेश की भाव पर दृष्टि न होने पर भाव कमजोर रहता है। यही कारण है कि पंचमेश की पंचम स्थान पर दृष्टि न होने मात्र से गर्भ की सुरक्षा एवं पुष्टि संदिग्ध हो जाती है। दूसरी वात यह है कि पाप ग्रह किसी भी भाव में बैठकर उसके फल का विनाश करता है। अतः पंचम स्थान मे पापग्रह के स्थित होने से गर्भपात होना स्वाभाविक है। यदि प्रश्न कुण्डली में इसके विपरीत स्थिति हो—अर्थात पंचमेश की पंचम स्थान पर दृष्टि हो और शुभ ग्रह पंचम स्थान में बैठा हो तो गर्भपात नहीं होता, अपितु गर्भ पुष्ट होता है।

प्रश्नशास्त्र के प्रायः सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों में इस प्रश्न का विस्तार से विचार किया गया है। नीलकण्ठी में कहा गया है कि यदि प्रश्नकाल में द्वादशेश पाप ग्रह हो; वह सूर्य के साथ होने से दग्ध हो, आपोक्लिम स्थान में स्थित हो और पाप ग्रहों से युतदृष्ट हो तो शिशु उत्पन्न होकर मर जाता है या गर्भपात हो जाता है।' एक और महत्वपूर्ण योग का वहां उल्लेख मिलता है यदि प्रश्न कुण्डली में शुक्र और सूर्य आठवें स्थान में स्थित हों और पापग्रह द्वितीय, अष्टम और द्वादश स्थान में स्थित हों तो प्रश्नकर्ता के सामने उसकी सभी सन्तानें मर जाती हैं और उसके दीर्घजीवी सन्तान नहीं होती। संकेत निधि में गर्भपात के निम्नलिखित योग वतलाये गये हैं: १. यदि प्रश्नलग्न में मंगल के साथ शनि बैठा हो तो गर्भपात होता है और २. चन्द्रमा

१. क्रूरश्चेदन्त्यपनिर्दग्धश्चापो क्लिमे युक्तः।
क्रूरैस्तु जातमात्रो म्रियते वालोऽथवः गर्भे।

यदि मंगल की या शनि की राशि में हो तथा इनसे युत या दृष्ट हो तो भी गर्भपात होता है। इसी प्रकार यदि पंचमेश अस्त, नीच राशिगत, पापग्रह से पीड़ित या विनष्ट हो तो भी गर्भपात होता है···ऐसा हमारा अनुभव है।

कितनी बार गर्भपात होगा ?

गर्भपात की संख्या का निर्धारण करने के लिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने एक निश्चित योग का वर्णन किया है, "यदि प्रश्न कुण्डली में पंचमेश और लग्नेश दोनों अष्टम स्थान में स्थित हों; ये जितने ग्रहों से युत या दृष्ट हों; उतनी बार गर्भपात होता है। यदि ये दोनों किसी ग्रह से युत या दृष्ट न हों, तो केवल एक बार ही गर्भपात होता है।" इस रीति से गर्भपात की संख्या का निर्धारण सुगमता पूर्वक किया जा सकता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली देखिये—

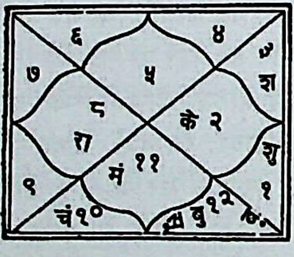

यहां लग्नेश सूर्य और पंचमेश गुरु दोनों अष्टम स्थान में स्थित हैं। ये दोनों बुध से युत और शनि से दृष्ट हैं। अतः निश्चित किया गया कि गर्भपात दो बार होगा।

क्या सन्तान होते ही मर जायेगी ?

सन्तान जीवित रहेगी या मर जावेगी? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए आचार्यों ने अनेक योगों का वर्णन किया है। किन्तु इस प्रसंग में हम अधिक विस्तार में न जाकर पाठकों

की जानकारी के लिए कुछ अपने अनुभव में आये योगों को अवश्य बतलाना चाहते हैं। यदि प्रश्न कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक भी योग हो तो गर्भ में स्थित शिशु जन्म लेते ही मर जाता है अथवा मरे हुए बच्चे का जन्म होता है।

(१) पंचमेश मंगल या राहु से युक्त होकर त्रिक स्थान में स्थित हो,

(२) पंचमेश और गुरु अष्टम स्थान में हों,

(३) पंचम और सप्तम स्थान में बलवान पापग्रह हों,

(४) पंचम स्थान में धनु राशि हो, उसमें राहु बैठा हो और किसी पाप ग्रह की उस पर दृष्टि हो।

१५., गुर्विणी प्रसव द्वारम्

अविनष्टो यदा गर्भाधिपो गर्भं निरीक्षिते।
तदैव प्रसवो गुर्व्या नान्यथेति विनिश्चयः ॥८८॥

अर्थात् गर्भ का स्वामी (पंचमेश) जब नष्ट न होकर गर्भ स्थान पंचम को देखता है तब गर्भिणी को प्रसव होता है। विपरीत स्थिति में नहीं होता।

भाष्य : "भाव पर जब भावेश की दृष्टि पड़ती है, तब भावफल की प्राप्ति होती है" यह ज्योतिषशास्त्र का प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य नियम है। अतः जब पंचमेश पंचम स्थान को देखता है तब सन्तान का जन्म होता है यह कहना युक्तियुक्त है। किन्तु यदि पंचमेश क्रूराक्रांत, क्रूरयुत, क्रूरदृष्ट या अस्त होने के कारण नष्टसंज्ञक हो, तो वह गर्भ का नाश (गर्भपात) कर देता है। इस स्थिति में प्रसव होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इन तथ्यों का विचार कर ग्रन्थकार ने ठीक ही कहा है कि जब

पंचमेश नष्ट संज्ञक न हो और पंचम स्थान को देखता हो तब प्रसव होता है। यदि पंचमेश नष्टसंज्ञक हो और पंचम स्थान को न देखता हो तो गर्भपात होता है। और यदि पंचमेश नष्ट संज्ञक होकर पंचम स्थान को देखता हो तो मरे हुए वच्चे का जन्म होता है, ऐसा हमारा अनुभव है। उदाहरणार्थं, निम्न-लिखित कुण्डली देखिये :

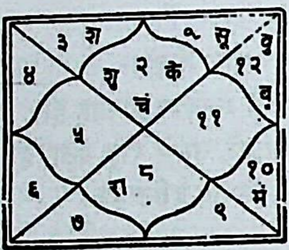

यहां पंचमेश बुध की पंचम स्थान पर पूर्ण दृष्टि है और वह नष्ट संज्ञक नहीं है। अत: इस मास में प्रसव होगा, यह कहना चाहिए, दिन का निश्चय करने के लिए चन्द्रमा की पंचम स्थान पर दृष्टि या घात चन्द्रमा का विचार कर लेना चाहिए।

प्रश्नशास्त्र के अन्य आचार्यों ने प्रसव काल का ज्ञान करने के लिए एक सरलतम उपाय वतलाया है—प्रश्नकाल में लग्न के जितने नवांश भुक्त हों उतने मास का गर्भ होना है तथा लग्न के जितने नवांश भोग्य हों उतने मास वाद प्रसव होता हैं। दिनादि का ज्ञान वर्तमान नवांश की भोग्य कलाओं से अनुपात के आधार पर कर लेना चाहिए। प्रक्रिया यह है कि वर्तमान नवांश की भोग्य कलाओं को ३० से गुणा कर २०० का भाग दें, यहां लब्धि दिन संख्या होगी। इन दिनों को मास संख्या में जोड़ने से प्रश्न दिन से जितने महिना और दिनों के वाद प्रसव होगा वह काल आसानी से जाना जा सकता है।

उदाहरणार्थ, किसी ने प्रसवकाल जानने के लिए प्रश्न किया। प्रश्नकाल में स्पष्ट लग्न = ४/१३/४० थी। अतः यहां

४ नवमांश भुक्त और ४ नवमांश भोग्य हैं। वर्तमान नवमांश की २० कलागत और १८० कला भोग्य है। यहां उक्त रीति से अनुपात करने से $\frac{१८० \times ३०}{२००} = २७$ दिन

२७ दिन लब्धि आयी। इसलिए प्रश्न दिन से चार मास एवं २७ दिन बाद प्रसव होगा, यह फलादेश करना चाहिए।

१६. अथापत्ययुग्म प्रसव द्वारम्

पृच्छालग्ने च चत्वारि ग्रहयुग्मानि सन्ति चेत्।
यत्र तत्रैव युग्मस्य प्रसवं ब्रुवते बुधाः ॥८६॥

अर्थात यदि प्रश्न लग्न (प्रश्नकुण्डली) में जहां कहीं भी चार स्थानों में दो-दो ग्रह स्थित हों तो यमल सन्तानों का जन्म होता है···ऐसा विद्वानों का कथन है।

भाष्य : प्रश्न कुण्डली में किन्हीं चार भिन्न भिन्न स्थानों में दो-दो ग्रह बैठे हों तो दो सन्तानों का जन्म होता है···यह ग्रन्थकार का मत है। किन्तु अन्य आचार्यों ने यमल सन्तति के जन्म की जानकारी देने वाले एक अन्य योग का निरूपण किया है, जो आज भी ज्योतिष जगत में प्रचलित और लोकप्रिय है। यदि प्रश्न लग्न में द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन) राशि हो तथा लग्न में या पंचम स्थान में शुभ ग्रह बैठे हों तो यमल (जुड़वां) सन्तति का जन्म होता है। यदि लग्न में मिथुन और धनु ये पुरुष राशियां हों तो दो पुत्र तथा यदि कन्या और मीन ये स्त्री राशियां हो तो दो कन्याओं का जन्म होता है।

यमल के जन्म के प्रसंग में द्विस्वभाव राशियां अपना विशेष

महत्व रखती हैं। गर्भाधान या प्रश्न के समय सूर्य, चन्द्र, मंगल गुरु और शुक्र द्विस्वभाव राशि या द्विस्वभाव राशि के नवमांश में स्थित हों तो यमल का जन्म होता है। आचार्य वराहमिहिर कल्याण वर्मा एवं गुणाकर आदि ने यही मत व्यक्त किया है। वृहज्जातक में कहा गया है कि यदि गुरु और सूर्य मिथुन और धनु राशि या इनके नवमांशों में स्थित हों तथा इन पर बुध की दृष्टि हो तो दो लड़कों का जन्म होता है। यदि चन्द्रमा, मंगल और शुक्र, कन्या और मीन राशि या इनके नवमांशों में स्थित हों तो दो कन्याओं का जन्म होता है। मिश्रित स्थिति में एक पुत्र और एक कन्या का जन्म जानना चाहिए।

पुत्र, कन्या जन्म विचार

प्रश्न शास्त्र में पुत्र और कन्या के जन्म के सम्बन्ध में काफी विचार किया गया है। इस का आधार अधिकांशतया पुरुष और स्त्री संज्ञक राशियों में पुरुष एवं स्त्री संज्ञक ग्रहों की स्थिति एवं दृष्टि है। मेष, मिथुन एवं सिंह आदि विषम राशियां पुरुष संज्ञक तथा वृष, कर्क एवं कन्या आदि सम राशियां स्त्री संज्ञक कही गयी हैं। श्लोक ४० में स्त्री एवं पुरुष ग्रहों का निरूपण किया जा चुका है, जिसके अनुसार सूर्य, मंगल और गुरु पुरुष ग्रह हैं तथा चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि और राहु स्त्री ग्रह माने गये हैं।

यदि प्रश्न लग्न में पुरुष राशि या उसका षड्वर्ग हो और उस पर बलवान पुरुष ग्रह की दृष्टि हो तो पुत्र का जन्म होता है। यदि लग्न में स्त्री राशि या उसका षड्वर्ग हो और उस पर स्त्री ग्रहों की दृष्टि हो तो कन्या का जन्म कहना चाहिए।

इसी प्रकार पंचमेश और लग्नेश विषम राशि में स्थित हों तो पुत्र तथा समराशि में स्थित हों तो कन्या का जन्म होता है। यदि पुरुष राशि में स्थित लग्नेश पुरुष राशि में स्थित पंचमेश को देखे तो पुत्र का जन्म तथा स्त्री राशि में स्थित लग्नेश स्त्री राशि में स्थित पंचमेश को देखे तो कन्या का जन्म होता है। कुछ विद्वानों ने सम और विषम भावों में शनि की स्थिति वश कन्या और पुत्र के जन्म का विचार किया है।

यमल योग का उदाहरण

गर्भ सम्बन्धी प्रश्न के समय की निम्नलिखित कुण्डलियां देखिये…

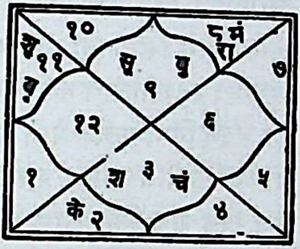

इस कुण्डली में लग्न, तृतीय सप्तम और द्वादश स्थान में दो दो ग्रह स्थित हैं। अतः ग्रन्थकार के अनुसार यमल योग है।

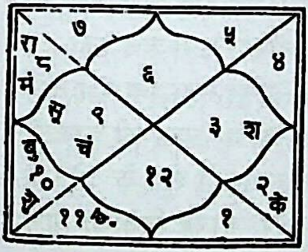

इस कुण्डली में कन्या (द्वि-स्वभाव) राशि लग्न में है और पंचम स्थान में दो शुभ ग्रह बुध एवं शुक्र बैठे हैं। अतः यमल योग स्पष्ट है। यहां पंचम स्थान में सम राशि होने के कारण दो कन्याओं का जन्म होगा, यह कहना चाहिए।

१७. अथ गर्भ मास संख्या ज्ञान द्वारम्

मास ज्ञानस्य पृच्छायां गर्भिण्या भृगुनन्दनः।
लग्नात्स्याद्यतमे स्थाने मासानाख्याति तावतः ॥९०॥

अर्थात् गर्भिणी के मास ज्ञान के प्रश्न में शुक्र लग्न से जितने संख्यक स्थान पर हो उतने मास का गर्भ कहे।

भाष्य : गर्भ कितने मास का है यह जानने के लिए प्रश्न लग्न से शुक्र जिस भाव में स्थित हो, उस भाव की संख्या के बराबर मास कहने चाहिए। किन्तु यदि शुक्र नवम भाव से आगे हो तो गणना लग्न से न करके पंचम भाव से करनी चाहिए। इस रीति से गर्भ की मास संख्या का अनुमान आसानी से किया जा सकता है। दिन का ज्ञान करने के लिए शुक्र का स्पष्टीकरण कर लें और स्पष्ट शुक्र के जितने भुक्तांश के हो उतने दिन व्यतीत माने। उदाहरणार्थ गर्भ के मास ज्ञान लिए दो व्यक्तियों ने क्रमशः वृषभ और कन्या लग्न में प्रश्न किए। उस दिन शुक्र सिंह राशि के १२ अंश (४/१२) पर था।

वृषभ लग्न से शुक्र चतुर्थ भाव में स्थित होने के कारण यह निश्चय किया गया कि गर्भिणी को चौथा मास चल रहा है। चूंकि शुक्र के भुक्त अंश १२ थे। अतः कहा गया कि गर्भ तीन मास एवं १२ दिन का है। इसी प्रकार कन्या लग्न की कुण्डली में पंचम स्थान (मकर) से आठवें स्थान में शुक्र के होने के कारण आठवां मास या सात महीने और बारह दिन का गर्भ कहा गया।

उक्त रीति के अलावा लग्न के नवमांश के द्वारा भी गर्भ के मास आदि का निर्धारण किया जा सकता है। लग्न के भोग्य

नवांश के आधार पर जैसे प्रसव काल का ज्ञान करते हैं; लग्न के भुक्तनवांश के आधार पर उसी प्रकार गर्भ के मास एवं दिन का ज्ञान किया जाता है। इस रीति की चर्चा श्लोक ८८ के भाष्य में की जा चुकी है।

१८. अथ स्त्रीलाभादि द्वारम्

स्थाने चतुर्थे सौम्यत्वमापन्ने ललना धृता।
सप्तमे सौम्यतां प्राप्ते प्रष्टुः कान्ता विवाहिता ॥९१॥

अर्थात् चतुर्थ स्थान शुभ होने पर प्रश्नकर्ता की स्त्री रखेली और सप्तम स्थान शुभ होने पर विवाहिता होती है।

भाष्य : इस द्वार में ४ श्लोकों में ग्रन्थकार ने पृच्छक की स्त्री विवाहिता या अविवाहिता (रखेली) होगी तथा स्त्री सुख कैसा होगा…इन प्रश्नों का ही विचार किया है। यद्यपि इस द्वार का नाम स्त्री लाभादिद्वार है किन्तु इसमें पृथक रूप से स्त्री प्राप्ति के योग का विचार नहीं किया गया। कारण यह है कि प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति का विचार श्लोक ६०-६१, ७२-७४ एवं ८०-८३ में किया जा चुका है। तदनुसार लग्नेश एवं सप्तमेश (कार्येश) में स्थान, युति या दृष्टि सम्बन्ध होने पर तथा कार्य स्थान पर चन्द्रमा की युति या दृष्टि होने से स्त्री-प्राप्ति का निश्चय सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इस प्रकार स्वयं विचार कर लेने का निर्देश आचार्य ने श्लोक ८३ में दिया है।

इसीलिए इस द्वार में प्राप्त स्त्री कैसी होगी ? इस प्रश्न का ही मुख्यतया विचार किया गया है। यदि चतुर्थ स्थान शुभ ग्रह की युति, दृष्टि या उसकी राशि के प्रभाव से शुभ हो

तो प्रश्नकर्ता की पत्नी रखेली होती है। कारण यह है कि चतुर्थ स्थान प्राणियों में परम मित्रता और घनिष्ठ सम्बन्ध का द्योतक है। तथा स्त्री एवं पुरुष की यह मैत्री और सम्बन्ध उन्हें विवाह के बिना भी पति पत्नी के रूप में रहने को विवश कर देते हैं, अस्तु।

सप्तमभाव परिणीता पत्नी का प्रतिनिधि भाव है। अतः इस स्थान पर शुभ ग्रहों की युति, दृष्टि या राशिवश शुभ प्रभाव होने से स्त्री विवाहिता होती है।

> क्रूरिते च चतुर्थे स्यात्परिणीता नितम्बिनी।
> सप्तमे क्रूरिते वा स्याद्धृतैव हि कुटुम्बिनी ॥९२॥
> उभयोः सौम्यतां प्राप्ते द्वे स्तो धृतविवाहिते।
> उभयोः क्रूरतां प्राप्ते न धृता न विवाहिता ॥९३॥

अर्थात चतुर्थ स्थान क्रूर प्रभावयुक्त होने पर स्त्री विवाहिता तथा सप्तम स्थान पाप प्रभावयुक्त होने पर स्त्री रखेली होती है। उक्त दोनों स्थान शुभ होने पर एक रखेली और एक विवाहिता तथा दोनों स्थान पाप प्रभावग्रस्त होने पर न तो रखेली और न ही विवाहिता (स्त्री की प्राप्ति) होती है।

भाष्य : स्त्री लाभ का योग होने पर यदि चतुर्थ स्थान पाप ग्रहों की युति, दृष्टि या राशि के प्रभाववश पापत्वग्रस्त हो तो व्यक्ति का अन्य स्त्री के साथ स्नेह या घनिष्ठ सम्बन्ध न होने के कारण उसकी पत्नी विवाहिता होती है। यदि इस स्थिति में सप्तम स्थान पाप प्रभावग्रस्त हो तो परिणिता पत्नी के होने की सम्भावना का अभाव होने के कारण उसकी स्त्री रखेली होती है। इसी प्रकार यदि उक्त दोनों स्थान शुभ प्रभाव

युक्त हों तो रखेली और विवाहिता दोनों प्रकार की पत्नी होती हैं तथा यदि ये दोनों स्थान पाप प्रभाव में हों तो किसी प्रकार की भी पत्नी नहीं होती।

स्त्री विचार के इस प्रसंग में पाठकों की जानकारी के लिए स्त्री विषयक कतिपय महत्वपूर्ण प्रश्नों की संक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है।

क्या यह कुमारी उपभुक्ता है ?

यह कुमारी उपभुक्ता है या नहीं ? इस प्रश्न का विचार करते समय यदि प्रश्न लग्न में स्थिर राशि हो तथा लग्नेश और चन्द्रमा भी स्थिर राशि में हो तो उसका चरित्र अच्छा कहना चाहिए। यदि प्रश्न लग्न, लग्नेश और चन्द्रमा तीनों चर राशि में हों तो अविवाहिता होते हुए भी परपुरुष का सहवास करने वाली जाननी चाहिए। यदि चन्द्रमा द्विस्वभाव राशि में और लग्न चर राशि में हो तो परपुरुष के संसर्ग का अल्प दोष मानना चाहिए। यदि प्रश्न काल में चन्द्रमा और मंगल स्थिर राशि से भिन्न राशि में हों तो यह परपुरुष सम्बन्ध गुप्त रूप से होता है। किन्तु यदि चन्द्रमा और मंगल लग्न में हों तो यह बात समाज में प्रसिद्ध हो जाती है।

क्या प्रेमिका से विवाह होगा ?

इस प्रश्न का विचार आचार्य रामदयालु ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संकेत निधि' में किया है। उन्होंने प्रेमिका या इच्छित लड़की से विवाह होने के ४ योगों का प्रतिपादन किया है।

(१) यदि चन्द्रमा ३, ६, ७, १० या ११वें स्थान में शुभ

ग्रह की राशि में हो और उसे बुध, गुरु एवं सूर्य देखते हों।

(२) लग्नेश और व्ययेश एक दूसरे के स्थान में हों।

(३) लग्नेश और सप्तमेश एक दूसरे के स्थान में हों।

(४) चन्द्रमा और शुक्र स्वराशि या उच्च राशि में स्थित हों।

विधवा एवं वन्ध्यायोग

प्रश्न काल में यदि चन्द्रमा लग्न, षष्ठ या अष्टम स्थान में हो और सप्तम स्थान में पाप ग्रह हो तो स्त्री विवाह के बाद शीघ्र ही विधवा हो जाती है यदि पापग्रह ५वें स्थान में स्थित और पापग्रह से दृष्ट हो तथा चन्द्रमा नीच राशि में स्थित हो तो स्त्री वन्ध्या होती है।

स्त्री मृत्यु विचार

यदि किसी व्यक्ति के प्रश्न के समय कुण्डली में निम्न-लिखित योग हों तो उसकी स्त्री मर जाती है—

(१) यदि सप्तमेश या शुक्र त्रिक स्थान में हों।

(२) यदि लग्न में राहु और सप्तम या अष्टम स्थान में शुक्र और मंगल हों।

(३) सप्तमेश शत्रु या नीच राशि में हो और पाप या मूढ़ ग्रह से देखा जाता हो तथा सप्तम स्थान पर पाप प्रभाव हो।

(४) सप्तमेश १, ६, ८ या १२वें स्थान में पापयुत या नीच राशिगत हो।

रुष्टा का आगमन विचार

आपसी विवाद, मतभेद या रतिकलह से रुष्ट होकर गयी स्त्री पुनः पति के पास आवेगी या नहीं ? इस प्रश्न का विचार करते समय निम्नलिखित योगों का ध्यान रखना चाहिए :

(i) प्रश्न लग्न से चतुर्थ पर्यन्त सूर्य और आगे शुक्र हो तो नहीं लौटेगी।

(ii) शुक्र और सूर्य चतुर्थ भाव से आगे हों तो अवश्य लौट आवेगी।

(iii) शुक्र का उदय शीघ्र हुआ हो या वह वक्री हो तो वह स्वयंमेव शीघ्र आ जावेगी।

(iv) शुक्र से पूर्ण चन्द्रमा का सम्बन्ध हो तो शीघ्र और क्षीण चन्द्रमा का सम्बन्ध हो तो विलम्ब सेआवेगी।

न धृता परिणीता वा योगेऽत्र सुखदायिका।
परिणीता धृता वाऽपि पाश्चात्ये सुखदायिका ।।६४।।

अर्थात् (धृता एवं परिणीता के) इस योग के प्रसंग में रखैल या विवाहिता स्त्री पहले सुख देने वाली नहीं होती। किन्तु बाद में सुख देती है।

भाष्य : श्लोक ६२ में बताया गया है कि यदि चतुर्थ स्थान में पाप प्रभाव हो तो विवाहिता स्त्री होती है। किन्तु इस योग में सुख (चतुर्थ) भाव पर पाप प्रभाव होने से सुख की हानि स्वाभाविक है। इसी प्रकार सप्तम स्थान पर पाप प्रभाव वश रखैली स्त्री का लाभ होता है। इस योग में सप्तम स्थान में स्थित पाप ग्रहों की लग्न पर पूर्णदृष्टि होने के कारण शरीर-सुख की हानि होना तर्कसंगत है। इस प्रकार इस योग में प्रारम्भ में कष्ट

और बाद में स्त्री-सुख मिलता है।

इस प्रचलित सन्दर्भ में दाम्पत्य सम्बन्ध का संक्षिप्त विचार कर लेना भी उपयुक्त होगा।

दम्पति प्रीतियोग

प्रश्नकुण्डली में यदि निम्नलिखित योग हों तो पति-पत्नी में प्रगाढ़ स्नेह होता है और यह प्रीति उतरोत्तर वृद्धिगंत होती है।

(i) लग्नेश सप्तम में और सप्तमेश लग्न में स्थित हों।
(ii) लग्नेश लग्न में और सप्तमेश सप्तम में स्थित हों।
(iii) लग्नेश और सप्तमेश दोनों लग्न में स्थित हों।
(iv) लग्नेश और सप्तमेश दोनों सप्तम स्थान में स्थित हों।
(v) लग्नेश और सप्तमेश परस्पर मित्र हों और एक दूसरे को देखते हों।

दम्पति बैर योग

यदि प्रश्न कुण्डली में निम्नलिखित योग हों तो पति-पत्नी में कलह, विवाद और मतभेद होता है।

(i) लग्नेश और सप्तमेश परस्पर शत्रु और निर्बल हों।
(ii) लग्नेश और सप्तमेश दोनों शत्रु राशि में हों और इन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।
(iii) लग्नेश और सप्तमेश नीच या अस्तंगत होकर परस्पर छटे और आठवें स्थान में हों।

१९. अथ विषकन्यानिर्णय द्वारम्

रिपुक्षेत्रस्थितौ द्वौ तु लग्नाद्यदि शुभग्रहौ।
क्रूरश्चैकस्तत्र जाता भवेत्स्त्री विषकन्यका॥९५॥

अर्थात् यदि लग्न से षष्ठ स्थान में दो शुभ ग्रह और एक पाप ग्रह हो तो इस योग में उत्पन्न स्त्री विषकन्या होती है।

भाष्य : उक्त योग का विचार सामान्यतया जन्मकुण्डली और प्रश्नकुण्डली दोनों के आधार पर किया जाता है। किन्तु इस प्रसंग में यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इस योग का विचार तभी करें जब प्रश्नकर्ता कोई स्त्री हो। प्रश्नकाल में यदि लग्न से छठे स्थान में दो शुभ ग्रह और एक पाप ग्रह बैठा हो तो प्रश्न करने वाली स्त्री विषकन्या होती है। शुभ एवं पाप ग्रहों का विचार श्लोक ४२ के आधार पर कर लेना चाहिए।

विषकन्या का फल या प्रभाव यह होता है कि वह अपने जन्म के बाद पितृकुल का क्षय शुरू कर देती है और विवाह के बाद पतिकुल का भी नाश करती है। वह सामान्यतया विधवा और सन्तानहीन होती है। उदाहरणार्थ—इस कुण्डली में बुध और शुक्र (दो शुभ ग्रह) सूर्य (पाप ग्रह) के साथ षष्ठ स्थान में सिंह राशि में स्थित है। अतः इस प्रश्न को पूछने वाली स्त्री को विष कन्या कहना चाहिए।

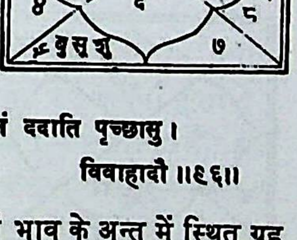

२०. अथ भावान्तगतग्रहद्वारम्

भावान्तगतः खेट परभावफलं ददाति पृच्छासु।
अन्तघटीर्यावदसावसीनफलं विवाहादौ ॥६६॥

अर्थात् सभी प्रकार के प्रश्नों में भाव के अन्त में स्थित ग्रह अगले भाव का फल देता है। किन्तु विवाह विपयक प्रश्नों में अन्तिम घटी तक वह उसी भाव का फल देता है।

भाष्य : जन्म कुण्डली और वर्षं कुण्डली में भाव एवं सन्धि में स्थित ग्रह के फल का विचार ससन्धि द्वादश भाव के स्पष्टीकरण या चलितचक्र से करते हैं। इस रीति के द्वारा एक ही राशि में स्थित ग्रह कभी अगले भाव, कभी पिछले भाव और कभी-२ सन्धि का फल देता है। किन्तु प्रश्न कुण्डली में भाव स्पष्टीकरण या चलित चक्र के आधार पर फलादेश नहीं किया जाना। अपितु प्रश्नशास्त्र में भाव के अन्तिम अंशों में स्थित ग्रह विवाह आदि के प्रश्न को छोड़कर अन्य समस्त प्रश्नों में अग्रिम भाव का फल देता है। क्योंकि वह शीघ्र ही अग्रिम भाव में प्रवेश कर जाता है। अतः निकट भविष्य में अगले भाव में उसकी स्थिनि होने के कारण अग्रिम भाव का फल देना स्वाभाविक है। किन्तु विवाह आदि प्रश्नों में वह अन्तिम क्षण तक उसी भाव का फल देना है, जिसमें वह स्थित हो। यदि कदाचित भाव के अन्तिम अंशों में स्थित ग्रह वक्री हो तो भी वह भाव का ही फल देता है अग्रिम भाव का नहीं। कारण स्पष्ट है कि उसकी निकट भविष्य में अग्रिम भाव में जाने की सम्भावना नहीं है, अस्तु। उदाहरणार्थं भाग्य संबंधी प्रश्न की इस कुण्डली में भाग्येश मंगल

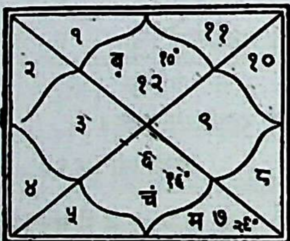

अष्ठमस्थान में तुला २९° पर है, गुरु लग्न में मीन १०° पर और चंद्रमा सप्तम में कन्या के १६° पर स्थित है। अतः यहाँ मंगल भावान्त में स्थित होने के कारण अष्टभाव स्थान पर नवम भाव का फल देगा। अतः कहना चाहिए कि भाग्योदय शीघ्र होने वाला है।

२१. अथ विवाहकाले वृष्टिः स्त्रीमृत्युविचारद्वारम्

अम्बर गतं शुभ ग्रह युग्मं वृष्टिर्भवेद्विवाहादौ।
लग्ने शुभत्रयस्य तु योगे महती भवेद्वृष्टिः ॥६७॥

अर्थात् दशम स्थान में यदि दो शुभ ग्रह हों तो विवाहादि के समय वर्षा हो। लग्न में ३ शुभ ग्रह होने पर अत्यधिक वर्षा हो।

भाष्य : इस द्वार में विवाह लग्न से वर्षा और स्त्री की मृत्यु का विचार किया गया है। विवाहादि से तात्पर्य समस्त शुभ संस्कारों से है। विवाहादि संस्कार के मुहूर्त में यदि लग्न से दशम स्थान में दो शुभ ग्रह हों तो विवाहादि के अवसर पर वर्षा होती है। यदि लग्न में तीन शुभ ग्रह हों तो अत्यधिक वर्षा होती है। प्रश्न लग्न के द्वारा भी इस रीति से विचार किया जा सकता है। दशम स्थान में २ शुभ ग्रह होने से हल्की वर्षा और लग्न में ३ शुभ ग्रह होने से अधिक वर्षा होती है।

वर्षा के योग : प्रश्न कुण्डली के द्वारा वर्षा की निश्चित जानकारी के लिए अन्य आचार्यों ने कुछ और योगों का विचार किया है। यहां हम कुछ अनुभूत योग देते हैं—

यदि प्रश्नकाल में शुभ ग्रह जलराशियों में द्वितीय, तृतीय एवं केन्द्र स्थान में स्थित हों तो निश्चित रूप से वर्षा होती है। कर्क, वृश्चिक, मकर, कुम्भ एवं मीन ये ५ जलराशियाँ और शेष शुष्क राशियाँ होती हैं। शुभ ग्रहों में चन्द्रमा और विशेष रूप से शुक्र जल के प्रतिनिधि ग्रह हैं। इसलिए यदि प्रश्न लग्न में चंद्रमा जलराशिगत हो तो भी वर्षा कहनी चाहिए।

सद्यः वृष्टि के लक्षण : वर्षा शीघ्र होने की जानकारी हमें

अपने आसपास के वातावरण से भी मिल जाती है। हमारे देश के वगैर पढ़े-लिखे किसान चारों ओर के वातावरण को देखकर सद्यः वृष्टि का निश्चय कर लेते हैं। सद्यः वृष्टि (शीघ्र वर्षा होने) के कुछ लक्षण जो हमारे अनुभव में आये हैं, वे इस प्रकार हैं—यदि बिल्लियां बार-बार अपने नाखूनों से धरती को कुरेदें, लोहे केऊपर मैल या जग लग जाय, चींटियाँ बिना किसी कारण के अपने अण्डे को लेकर भूमि के ऊपर एकत्रित हों, सर्प पेड़ की डाल पर लटक जावे या गाय आदि पालतू जानवर घर से बाहर जाने की इच्छा न करें और खुरों को बारम्बार जमीन पर मारें तो जानना चाहिए कि वर्षा शीघ्र होने वाली है। इस प्रकार के अनेक लक्षणों का विवेचन संहिता ग्रन्थों में किया गया है।

मूर्तावुच्चः खेटो जामित्रे दधाति येन वृशम्।
स नो हन्ति कलत्रं क्रूराश्चान्ये तु निघ्नन्ति ॥९८॥

अर्थात् लग्न में उच्चराशिगत ग्रह सप्तम स्थान को देखने से स्त्री को नहीं मारता। किन्तु पाप ग्रह लग्न में स्थित हो तो स्त्री को मारते हैं।

भाष्य : विवाह लग्न का प्रभाव दम्पति के जीवन सम्बन्ध एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) सिद्धि पर पड़ता है। अतः विवाह का मुहूर्त एवं लग्न शुद्धि का विचार प्राचीन काल से किया जाता रहा है। मुहूर्त शास्त्र के समस्त ग्रन्थों में विवाह लग्न की शुद्धि सविस्तार एवं सावधानीपूर्वक की गयी है। यह विचार इस गहराई तक किया गया है कि लग्न से किस-किस भाव मे स्थित कौन-कौन सा ग्रह अशुभ या नेष्ट होता है। प्रायः सभी आचार्यों ने विवाह लग्न में पाप ग्रह एवं चन्द्रमा को नेष्ट

माना है। कारण स्पष्ट है कि लग्न में स्थित पाप ग्रह की सप्तम स्थान पर पूर्ण दृष्टि होने के कारण वह दम्पति की हानि या मृत्यु कर सकता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर ग्रन्थकार ने लग्न में पाप ग्रह होने पर स्त्री-मृत्यु होना बतलाया है। किन्तु उच्चराशिगत ग्रह का अशुभ प्रभाव शून्य तुल्य होता है। अतः वह विवाह लग्न में स्थित होकर सप्तम स्थान को देखता हुआ भी पाप ग्रह स्त्री की मृत्यु नहीं करता। सारांश यह कि विवाह लग्न में पाप ग्रह होने पर स्त्री की मृत्यु होती है किन्तु उच्चराशिगत किसी भी ग्रह के होने पर स्त्री की मृत्यु नहीं होती।

२२. अथ वादविवादविचारद्वारम्

क्रूरः रवेटो लग्ने विवाद पृच्छासु जयति विवदन्तम्।
सर्वावस्थासु परं नीचास्ते जयति द्विषितम् ॥६६॥

अर्थात् विवाद आदि के प्रश्न में यदि क्रूर ग्रह लग्न में हो तो वादी की जीत होती है। किन्तु यदि यह नीच या अस्तंगत हो तो हर हालत में शत्रु जीतता है।

भाष्य : इस द्वार में वाद विवाद, युद्ध, लड़ाई, मुकदमा एवं चुनाव सम्वन्धी प्रश्नों में हार-जीत का विचार दिया गया है। मुकदमा, आक्रमण या लड़ाई में पहल करने वाले को वादी या यायी कहते हैं और उसका सामना करने वाले को प्रतिवादी या स्थायी। लग्नवादी का और सप्तम स्थान प्रतिवादी का प्रतिनिधि भाव है। विवाद विषयक उक्त समस्त प्रश्नों में क्रूर ग्रह की स्थिति शुभ किन्तु दृष्टि अशुभ मानी गई है। अतः इस प्रकार के प्रश्न में यदि क्रूर ग्रह लग्न में स्थित हो तो सप्तम स्थान पर उसकी दृष्टि होने के कारण वादी की जीत होती है। और यदि

पाप ग्रह सप्तम स्थान में स्थित हो, लग्न पर उसकी दृष्टि होने के कारण प्रतिवादी की विजय होती है। प्रश्नशास्त्र के प्राय: सभी आचार्यों का यही मत है।

किन्तु नीचराशिगत ग्रह भाव फल का विनाशक होता है और अस्तंगत ग्रह भी विनष्ट सज्ञक होने के कारण भाव फल का नाश करता है। अत: यदि लग्न में नीच राशिगत या अस्तंगत ग्रह स्थित हो तो वादी की पराजय और शत्रु की विजय कही गयी है।

लग्ने द्यूने च यदा क्रूर: खटो विवादिनोर्नं तदा।
कलहनिवृत्त: कालेन जयति बलबान्गतबलं तु ॥१००॥

अर्थात् यदि लग्न और सप्तम में क्रूर ग्रह स्थित हो तो विवाद करने वालों में कलह समाप्त नहीं होता। किन्तु काफी समय के वाद वलवान् ग्रह निर्बल ग्रह को जीतता है।

भाष्य : प्रश्नकाल में यदि क्रूर ग्रह लग्न और सप्तम में स्थित हो तो वादी और प्रतिवादी दोनों को समान रूप से वल मिलने के कारण उन दोनों का विवाद काफी समय तक समाप्त नहीं होता। किन्तु लग्न और सप्तम में स्थित ग्रहों में से एक बलवान् और दूसरा निर्बल हो तो बलवान् की निर्बल पर विजय होती है। तात्पर्य यह है कि लग्नस्थ क्रूर ग्रह बलवान् हो तो वादी की और सप्तमस्थ ग्रह वलवान् हो तो प्रतिवादी की जीत होती है। कदाचित ये दोनों ग्रह बलवान् हों तो वादी और प्रतिवादी में काफी समय तक विवाद चलने के बाद या तो समझौता हो जाता है अथवा दोनों में भयंकर लड़ाई होती है। ग्रन्थकार के इस मत का अन्य आचार्यों ने भी समर्थन किया है।

सन्धि योग

वादी-प्रतिवादी की जय-पराजय के प्रसंग में सन्धि का विचार करना आवश्यक समझते हुए पाठकों की जानकारी के लिए एक अनुभूत सन्धि योग लिखा जा रहा है—यदि शुभ ग्रह विषम राशियों में लग्न, एकादश या द्वादश स्थानों में स्थित हों तो बलवान् विरोधियों में सन्धि होती है। किन्तु यदि पाप ग्रह उक्त राशि एवं भावों में हों तो विवाद, मुकदमा या लड़ाई भयंकर रूप धारण कर लेती है।

लग्नं द्यूनं मुक्त्वा परस्परं क्रूरयोः सकलदृष्टौ।
विवद द्विवादि युगलं सुरिकाभ्यां प्रहरति तदेवम् ॥१०१॥

अर्थात् लग्न और सप्तम स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थान में स्थित दो पाप ग्रहों की परस्पर दृष्टि होने पर वाद विवाद करते हुए वादी और प्रतिवादी छुरों का प्रहार करते हैं।

भाष्य : पिछले श्लोक में बताया जा चुका है कि यदि लग्न और सप्तम में क्रूर ग्रह हों तो विवाद की समाप्ति शीघ्र नहीं हो तथा काफी समय के बाद दोनों पक्षों में या तो सन्धि हो जाती है अथवा हार-जीत का निर्णय। यही कारण है कि हथियारों से लड़ाई होने का विचार करते समय ग्रन्थकार ने लग्न और सप्तम में क्रूर ग्रह की स्थिति का मुख्यतया निषेध किया है। यदि लग्न और सप्तम के अलावा अन्य स्थानों में स्थित दो पाप ग्रहों में परस्पर दृष्टि हो तो वादी और प्रतिवादी दोनों पक्ष छुरी-तलवार आदि हथियारों से एक-दूसरे पर आक्रमण करते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि इस योग में वादी की मृत्यु होती है। किन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं लगता। हमारा

विचार है कि यदि लग्नेश अष्टम स्थान में हो तो वादी की और सप्तमेश अष्टम स्थान में हो तो प्रतिवादी की मृत्यु कहनी चाहिए। क्योंकि लग्न और सप्तम क्रमशः वादी और प्रतिवादी के प्रतिनिधि भाव हैं।

२३. अथ संकीर्णनिर्णयद्वारम्

व्रतदानपट्टारोपण प्रतिमास्थापन विधिः स्मृतो गुरुणा।
दशमस्थानं कार्यं रविदृष्टि प्रभृतिभिर्बलवत् ॥१०२॥

अर्थात् दीक्षाग्रहण, राज्याभिषेक और प्रतिमा स्थापन (जब) दशम स्थान सूर्यादि की दृष्टि से बलवान् हो (तब) करना चाहिए, ऐसा गुरुजनों ने कहा है।

भाष्य : दीक्षा, राज्य एवं देव प्रतिष्ठा का प्रतिनिधि भाव दशम भाव है तथा इस भाव के कारक सूर्य, बुध और गुरु होते हैं। अतः दशम स्थान पर सूर्य, बुध एवं गुरु आदि की दृष्टि होने पर जब दशम स्थान बलवान् हो तब दीक्षाग्रहण, राज्याभिषेक एवं मूर्ति प्रतिष्ठा आदि कार्य शुभ होते हैं। वस्तुतः उक्त तीनों कार्य व्यक्ति का यश, प्रभाव एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले हैं। इसलिए प्रश्न कुण्डली में दशम स्थान का बलवान होना आवश्यक है।

यत्रान्य लाभ योगो न भवति नवमं च भवति शुभदृष्टम्।
तत्राचिन्ति तलाभः प्रष्टुर्गणकेन निर्देश्यः ॥१०३॥

अर्थात् जब लाभ का कोई अन्य योग न हो, और नवम स्थान पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो प्रश्नकर्ता को अचिन्तित (अप्रत्याशित) लाभ होता है ऐसा दैवज्ञ को कहना चाहिए।

भाष्य : यदि लाभ विषयक प्रश्न के समय लाभालाभ

विचार द्वार में प्रतिपादित कोई लाभ योग न हो; किन्तु भाग्य भाव पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो व्यक्ति को अप्रत्याशित लाभ होता है। कारण यह है कि इच्छित या चिन्तित लाभ केवल लाभ योग होने पर ही सम्भव है। अतः प्रश्न कुण्डली में लाभ योग न होने के कारण निश्चित प्रक्रिया या माध्यम से लाभ होने का प्रश्न ही नहीं उठता। भाग्य स्थान पर शुभ ग्रह की दृष्टि भाग्य को प्रबल करती है। इसी भाग्य के प्रभाववश पृच्छक को अचिन्तित या अप्रत्याशित लाभ होना युक्तिसंगत है। सारांश यह है कि इस योग में प्रश्नकर्ता जिस व्यक्ति, व्यवसाय या माध्यम से लाभ पूछता है उससे लाभ न होकर किसी अन्य प्रकार से और अप्रत्याशित रूप से लाभ होता है और इस लाभ का हेतु भाग्य या प्रारब्ध की प्रबलता ही है। यहाँ आचार्य ने लाभभाव की अपेक्षा भाग्य भाव को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। क्योंकि लाभ योग न होते हुए भी भाग्य के प्रभाववश लाभ होता है।

रन्ध्रे लग्नाधिपतिर्भुनक्ति कार्यं तदैव यदि तस्मात् ।
शत्रौ यात्यथ मित्रे तस्मिन्काले तदा सिद्धिः ॥१०४॥

अर्थात् यदि लग्नेश अष्टम स्थान में हो तब वह शत्रु राशि में होने पर कार्य का नाश करता है और मित्र राशि में होने पर कार्य की सिद्धि करता है।

भाष्य : ज्योतिष जगत में प्रायः यह सामान्यनियम प्रचलित है कि जिस भाव का स्वामी छठे, आठवें या बारहवें स्थान में हो तो उस भाव के फल का नाश होता है। इसका विवेचन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—कि यदि भाव का स्वामी त्रिक स्थान में मित्र ग्रह की राशि में हो तो वह भाव की वृद्धि करता

है। और यदि वह शत्रु की राशि में स्थित हो तो भाव का नाश करता है। किन्तु इस विषय में हमारा मत है कि किसी भी भाव का स्वामी उच्च, मूलत्रिकोण, स्वराशि या मित्र राशि में त्रिक स्थान में स्थित हो तो वह दोषकारक नहीं है। यदि वह नीच राशि या शत्रु राशि में होकर त्रिक स्थान में स्थित हो तो अवश्य भावफल का विनाश करता है।

उदाहरणार्थ—भाग्यविषयक प्रश्न की इस कुण्डली में

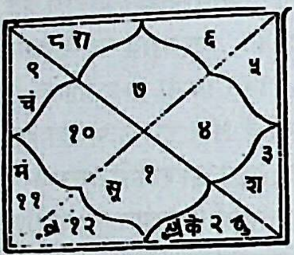

यद्यपि भाग्येश और लग्नेश का योग अष्टम स्थान में हो रहा है किन्तु भाग्येश बुध मित्रराशि में और लग्नेश शुक्र स्वराशि में है। अतः इन दोनों के दोषयुक्त होने के कारण भाग्य वृद्धि होने का निश्चय किया गया।

वीक्षणयुग्म्यां क्रूरैर्लग्नषडष्टसु च विध्द इत्यबलः।
पुष्णाति कष्ट भावं मृत्युमपि प्रश्नतश्चन्द्रः॥१०५॥

अर्थात लग्न, छठें और आठवें स्थान पाप ग्रहों युक्त या दृष्ट चन्द्रमा निर्बल होता है। प्रश्नकाल में ऐसा चन्द्रमा कष्ट की वृद्धि करता है और मृत्यु देता है।

भाष्य : चन्द्रमा के बलाबल का निर्णय करने के प्रसंग में सामान्यतया क्षीण चन्द्रमा को निर्बल माना गया है। किन्तु ग्रन्थकार का कहना है कि केवल क्षीण चन्द्रमा ही निर्बल नहीं होता। अपितु वह लग्न, छठे एवं आठवें स्थान में पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट होने पर भी निर्बल कहा जाता है। इसका कारण

यह है कि पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट ग्रह विनष्ट संज्ञक होता है तथा विनष्ट संज्ञक ग्रह निर्बल एवं अनिष्टकर होता है। अतः प्रश्न कुण्डली में ऐसा चन्द्रमा कष्ट की वृद्धि करता है और कभी कभी मृत्यु कारक भी हो जाता है। उदाहरणार्थ—यहाँ षष्ठस्थान में शनि के साथ स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि है। अतः रोगी को मृत्यु तुल्य कष्ट मिलेगा।

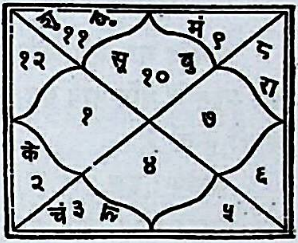

द्वादशे शोभनः खेटो विवाहादिषु सव्द्ययम्।
क्रूरोऽप्यसद्व्ययं चोर राजाग्नि प्रभवं ग्रहः ॥१०६॥

अर्थात द्वादश स्थान में स्थित शुभ ग्रह विवाहादि शुभ कार्यों पर व्यय कराता है और पाप ग्रह चोर, राजदण्ड या अग्निकाण्ड आदि अशुभ कार्यों से हानि कराता है।

भाष्य : द्वादश स्थान व्यय का प्रतिनिधि भाव है। अतः इस स्थान में स्थित ग्रह व्ययकारक कहा गया है। किन्तु यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि इस स्थान में कोई शुभ ग्रह स्थित हो तो विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डन एवं अन्य शुभ कार्यों में खर्चा होता है। यदि इस स्थान में पाप ग्रह हो तो चोरी, राजदण्ड एवं अग्निकाण्ड जैसे अशुभ कार्यों से हानि होती है। इस विषय में हमारा अनुभव है कि व्यय स्थानगत सूर्य राज दण्ड, मंगल चोरी और अग्निकाण्ड, शनि बीमारी, राहु केतु अचानक झगड़े के कारण अपव्यय कराता है।

२४. अथ दीप्ति पृच्छाद्वारम्

गृहमागतो न यदसौ किं बद्धः किमथ हत इति प्रश्ने।
मूर्तौ क्रूरो यदि तत्र हतो न बद्धोऽथवा पुरुषः ॥१०७॥

अर्थात घर नहीं आया प्रवासी कहीं बन्दी है या मर गया ? इस प्रश्न में यदि पाप ग्रह लग्न में हो तो वह न तो मरा है और न हीं बन्दी है।

भाष्य : इस द्वार में ग्रन्थकार ने दीप्त (संदिग्ध) प्रश्न का विचार किया है। यहाँ विशेषरूप से प्रवासी की संदिग्ध अवस्था का निश्चय किया गया है कि वह जीवित है या मर गया है अथवा बन्धनादि में है। इस प्रकार के प्रश्न में यदि लग्न मे पाप ग्रह हो तो प्रवासी सकुशल है इसके विपरीत यदि लग्न में शुभ ग्रह हो तो प्रवासी रोगी, बन्दी या अन्य कष्ट में होता है।

सप्तमगोऽष्टमगो वा चेत्क्रूरस्तद्धतोऽथ बद्धोवा।
मूर्तौ च सप्तमेऽपि च यद्धा लग्नेऽष्टमे च भवेत् ॥१०८॥
क्रूरस्तदाऽसौ पुरुषो बद्धश्च हतश्च मुच्यते च परम्।
दीप्तत्वाद्विहितमिदं व्याख्यानं क्रूरविषयमिह ॥१०९॥

अर्थात् यदि पाप ग्रह सप्तम या अष्टम भाव में हो तो (प्रवासी की) मृत्यु या बन्धन होगा यदि लग्न और सप्तम या लग्न और अष्टम में पापग्रह स्थित हो तो प्रवासी वन्धन या मृत्यु तुल्य संकट में होता है किन्तु मुक्त हो जाता है। यह पाप ग्रह का वर्णन दीप्तत्व के आधार पर किया है।

भाष्य : यद्यपि प्रश्न लग्न में क्रूर ग्रह की स्थिति प्रवासी की कुशलता की सूचक हैं। किन्तु सप्तम और अष्टम स्थान में उसकी स्थिति प्रवासी की मृत्यु या बन्धन का बोध कराती है।

यदि लग्न और सप्तम में अथवा लग्न और अष्टम में पाप ग्रह हों तो प्रवासी बन्धन या मृत्यु तुल्य संकट में होता है परन्तु वह इससे मुक्त हो जाता है। उसकी मुक्ति का कारण अधिकांशतया लग्नस्थ पाप ग्रह होता है।

प्रवासी की संदिग्ध अवस्था का निर्णय प्रश्नशास्त्र के प्रायः सभी ग्रन्थों में किया गया है। अन्य आचार्यों ने क्रूर ग्रह की स्थिति के अलावा अन्य ग्रहों प्रभाववश कुछ महत्वपूर्ण योगों का व्याख्यान किया है। जिन्हें यहाँ लिखा जा रहा है—

प्रवासी की मृत्यु के योग

(१) यदि शुभ ग्रह त्रिक स्थान में हों और निर्बल पाप ग्रहों से दृष्ट हों तथा सूर्य और चन्द्रमा पाप ग्रहों से युक्त हों।

(२) लग्नेश और चन्द्रमा छठे या आठवें स्थान में अष्टमेश से युक्त हों।

(३) पाप ग्रह पृष्ठोदय राशियों में केंद्र, त्रिकोण, षष्ठ या अष्टम में हों तथा इनपर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।

(४) प्रश्न लग्न में पृष्ठोदय राशि हो और उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो।

प्रवासी को कष्ट का योग

(१) प्रश्न लग्न में पृष्ठोदय राशि हो उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो या पाप ग्रह केन्द्र में हो तो प्रवासी दुःख से पीड़ित होता है।

(२) यदि अष्टम स्थान में सूर्य और मंगल हो तो मार्ग

में चोर दस्यु आदि का भय होता है।

(३) यदि सूर्य सिंह राशि में हो तथा चन्द्रमा या मंगल अष्टम स्थान में हो तो शस्त्र भय होता है।

(४) यदि नवम स्थान में शनि शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो प्रवासी रोगी होता है।

(५) यदि केन्द्र में पाप ग्रह शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो तो प्रवासी बन्धन या प्रताड़न प्राप्त करता है।

२५. अथ पथिकगमानगमनद्वारम्

चतुर्थे दशमे वापि यदि सौम्यग्रहो भवेत।
तदा न गमनं क्रूरैस्तत्रैव गमनं भवेत् ॥११०॥

अर्थात् यदि चतुर्थ या दशम स्थान में शुभ ग्रह हो तो गमन नहीं होता और पाप ग्रह हों तो गमन होता है।

भाष्य : चतुर्थ स्थान घर और गृह सुख का तथा दशम स्थान व्यापार एवं समाजिक प्रतिष्ठा का प्रतिनिधि है। अतः इन स्थानों में शुभ ग्रह होने पर गृह-सुख और व्यापार की वृद्धि होती है। परिणामतः इसमें व्यक्त व्यक्ति यात्रा नहीं कर पाता किन्तु यदि इन स्थानों में पाप ग्रह स्थित हों तो घरेलू और व्यापारिक समस्यायें उत्पन्न होती हैं। तथा इन समस्याओं का समाधान करने के लिए व्यक्ति को देश-विदेश की यात्रा करनी पड़ती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर सम्भवतः ग्रन्थकार नें कहा है कि यदि प्रश्न लग्न से चतुर्थ और दशम स्थान में शुभ ग्रह हों तो यात्रा नहीं होती किन्तु पाप ग्रह हों तो यात्रा अवश्य होती है। अन्य आचार्यों ने भी इस मत का समर्थन किया है। यात्रा के इस प्रसंग में एक बात ध्यान रखने वाली

यह है कि यदि इन स्थानों में चर राशि हो तो यात्रा होती है। किन्तु यदि स्थिर राशि हो तो यात्रा नहीं हो पाती।

यात्रा में व्यक्ति को सुख मिलेगा या दुःख इसका निर्णय करने के लिए अनेक योगों में से कुछ महत्वपूर्ण योग लिखे जा रहे हैं :

(१) लग्न में पृष्ठोदय राशि हो और इस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तथा ५, ७ एवं ६वें स्थान में पापग्रह हों तो यात्रा में कष्ट मिलता है।

(२) लग्न में पाप ग्रह हों तो यात्रा कष्टमय होती है।

(३) लग्न या लग्नेश से जितने ग्रह नवम और द्वादश स्थान में हों तो यात्रा में उतने संकटों का सामना करना पड़ता है।

(४) लग्न और लग्नेश से जितने शुभ ग्रह नवम स्थान में हों यात्री को उतनी बार लाभ एवं हर्ष मिलता है।

(५) यदि पाप ग्रह की राशि में केन्द्र या त्रिकोण भाव में पाप ग्रहों से दृष्ट शनि हो तो यात्री बन्धन में पड़ जाता है।

द्वितीये केन्द्रतोऽभ्येति यदा खेटस्तदागमः।
आयायिसुं ग्रहं दृष्ट्वा ब्रुयादिदमशंकितः ॥१११॥

अर्थात् जब केन्द्र से दूसरे स्थान में ग्रह आता है तब (प्रवासी) घर आता है—यह बात आगन्तुक ग्रह को देखकर स्पष्ट रूप से कहनी चाहिए।

भाष्य : जब ग्रह केन्द्र स्थानों से पणफर स्थानों में आत्र तो प्रवासी अपने घर लौट आता है। द्वितीय, पंचम, अष्टम,

और एकादश भाव पणफर कहलाते हैं तथा ये भाव क्रमशः कुटुम्व, सन्तति, विपत्ति और लाभ का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन भावों में गोचरीय क्रम से जव ग्रह जाता है तो इनके प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है। परिणामतः प्रवास से आगमन की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। किन्तु अन्य आचार्यों ने आगमन का योग इससे कुछ भिन्न कहा है।

आगमन योग

(१) लग्न में चरराशि या चर नवांश हो तथा चन्द्रमा चतुर्थ स्थान में हो तो प्रवासी सत्र कार्य सम्पन्न कर सुखपूर्वक आ जाता है।

(२) केन्द्र में शुभ ग्रह हों, पाप ग्रहों की दृष्टि न हो तथा अष्टम स्थान में चन्द्रमा हो तो प्रवासी सुखपूर्वक आ जाता है।

(३) लग्न से जिस स्थान में बलवान ग्रह हो उतने मास में प्रवासी घर आ जाता है।

(४) यात्रा लग्न से सप्तम स्थान का स्वामी जब वक्री हो तब यात्रा से निवृत्ति होती है।

(५) प्रश्न लग्न से सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तो प्रवासी मार्ग में होता है।

द्वितीयमायियासुश्च चन्द्रे केन्द्राद्विशेषतः।
पथिकागमनं ब्रूते मुक्तवा सप्तमकेन्द्रकम् ॥११२॥

अर्थात् सप्तमस्थान को छोड़कर केन्द्र स्थानों से दूसरे स्थान में चन्द्रमा आने पर प्रवासी आता है।

भाष्य : पहले श्लोक में कहा जा चुका है कि जब पणफर (२, ५, ८, एवं ११) स्थान में ग्रह आता है तो प्रवासी का आगमन होता है। यहाँ इन स्थानों में चन्द्रमा की स्थिति वश आगमन योग बताया गया है। पणफर स्थानों में से केवल अष्टम स्थान का यहाँ ग्रहण नहीं किया गया क्योंकि इस स्थान में चन्द्रमा होने पर प्रवासी या तो किसी विपत्ति एवं बंधन में होता है अथवा उसकी मृत्यु सम्भव है। इसीलिए ग्रन्थकार ने अष्टम स्थान को छोड़कर शेष द्वितीय, पंचम एवं एकादश स्थान में चन्द्रमा होने पर प्रवासी का आगमन कहा है।

इन्दुः सप्तमगो लग्नात्पथिकं वक्ति मार्गगम्।
मार्गाधिपश्च राश्यर्द्धात्परभागे व्यवस्थितः ॥११३॥

अर्थात् प्रश्न लग्न से चन्द्रमा सप्तम स्थान में हो और नवमेश किसी राशि के उत्तरार्द्ध में हो तो व्यक्ति मार्ग में होता है।

भाष्य : सप्तम स्थान यात्रा से निवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है और नवम स्थान मार्ग का। अतः यदि चन्द्रमा सप्तम स्थान में हो और नवमेश राशि के उत्तरार्द्ध (१५ अंश से अधिक) हो तो प्रवासी लौटते समय मार्ग में होता है। अन्य आचार्यों ने भी इस मत का समर्थन किया है।

चरलग्ने चरांशे च चतुर्थे चन्द्रमाः स्थितः।
ब्रूते प्रवासिनं व्यक्तं समायातं स्ववेश्मनि ॥११४॥

अर्थात् लग्न में चरराशि या चर नवांश हो और चन्द्रमा चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो प्रवासी अपने घर आ गया है—यह स्पष्ट कहना चाहिए।

भाष्य : चतुर्थ स्थान घर एवं गृह सुख का स्थान है। जब

इसमें चन्द्रमा हो तथा प्रश्न लग्न में चर राशि हो तो पथिक का प्रवास समाप्त होकर उसे घर में आमोद-प्रमोद एवं सुख मिलता है। प्रश्न लग्न में चर राशि का न॰ांश होने पर भी यही फल जानना चाहिए। वस्तुतः चतुर्थ स्थान में शुभ ग्रह या चन्द्रमा की स्थिति होने पर यात्रा नहीं होती, किन्तु परदेश से आगमन अवश्य होता है। अन्य आचार्यों का भी यही मत है।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली देखिये :

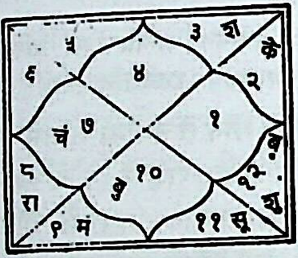

२६. अथमृत्युरोगादिद्वारम्

स्मरे व्यये धने क्रूरे लग्नमृत्यौ रिपौ शशि।
सद्यो मृत्युकरो योगः क्रूरे वा चन्द्रपार्श्वगे ॥११५॥

अर्थात सप्तम द्वितीय और द्वादश स्थान में पाप ग्रह तथा लग्न अष्टम या षष्ठ में चन्द्रमा हो—यह योग शीघ्र मृत्युदायक है। अथवा चन्द्रमा के दोनों ओर पाप ग्रह होने पर भी शीघ्र मृत्यु होती है।

भाष्य : इस द्वार में ग्रन्थकार ने रोगी की मृत्यु का विचार किया है। रोगी की अवस्था का विचार करते समय यदि 'सप्तम, द्वितीय और द्वादश स्थान में पाप ग्रह होंगे तो लग्न पर

पाप ग्रहों की दृष्टि होगी तथा लग्न पापक्रान्त भी रहेगी। इस स्थिति में स्वास्थ्य लाभ की सम्भावना नहीं हो सकती। और यदि चन्द्रमा भी लग्न, षष्ठ या अष्टम स्थान में स्थित हो जाय तो उस पर भी पाप ग्रहों की दृष्टि पड़ेगी। परिणामतः इस योग में रोगी की मृत्यु होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार चन्द्रमा के पापक्रांत होने पर भी मृत्यु होती है। क्योंकि प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा कार्य सिद्ध का बीज माना गया है।

इस श्लोक में रोगी की मृत्यु के चार योग बतलाये गये हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं :

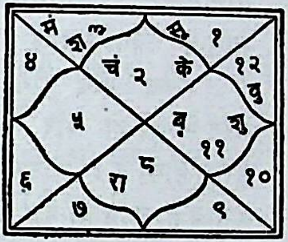

(i) द्वितीय, सप्तम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तथा चन्द्रमा लग्न में हो। उदाहरणार्थ साथ की कुण्डली नं० १ देखिये :

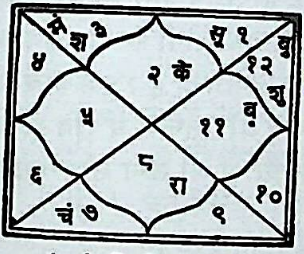

(ii) द्वितीय, सप्तम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तथा चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो। उदाहरणार्थ साथ की कुण्डली सं० २ देखिये :

(iii) द्वितीय, सप्तम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तथा चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो। उदाहरणार्थं कुण्डली सं० ३ देखिये :

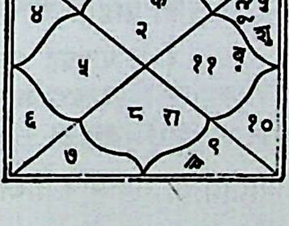

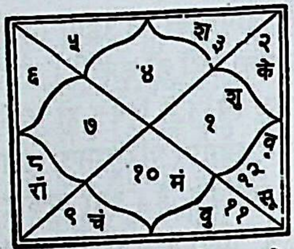

(iv) चन्द्रमा के दोनों पापग्रह हों। उदाहरणार्थं साथ की कुण्डली सं० ४ देखिये :

लग्ने रविः स्मरे चन्द्रो भवेद्योगोऽयमेव हि।
एतेषु रोगिणो मृत्युः सद्यस्त्वन्यस्य चापदः ॥११६॥

अर्थात् लग्न में सूर्य और सप्तम में चन्द्रमा हो तो भी यह योग बनता है। इन योगों में रोगी की शीघ्र मृत्यु होती है और अन्य को विपत्ति मात्र ।

भाष्य : यदि रोगी के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्न के समय लग्न में सूर्य हो और सप्तम में चन्द्रमा हो तो रोगी की शीघ्र मृत्यु होती है। कारण यह कि लग्न स्थित पाप ग्रह का लग्न प्रभाव है, साथ ही वह अपनी दृष्टि द्वारा चन्द्रमा को भी प्रभावित कर रहा है। अतः लग्न और चन्द्रमा दोनों के पाप प्रभाव-युक्त होने के कारण रोगी की बचना असम्भव है। कुछ आचार्यों का मत है कि यदि लग्न में चन्द्रमा और सप्तम में रवि हो तो रोगी की मृत्यु होती है। इस स्थिति में भी लग्न और चन्द्रमा दोनों पर पाप प्रभाव रहता है।

रोगी की मृत्यु के अन्य योग

(i) पापग्रह षष्ठेश लग्न में स्थित हो और व्यक्ति की जन्मराशि को देखता हो।
(ii) चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के मध्य में चतुर्थ या अष्टम स्थान में हो।

(iii) द्वादश स्थान पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो और छठे स्थान में चन्द्रमा हो।

(iv) अष्टम स्थान में स्थित चन्द्रमा को पापग्रह देखते हों।

(v) अष्टमेश लग्न में तथा लग्नेश अष्टम में हो और इनका चन्द्रमा से सम्बन्ध हो।

रोगी की मृत्यु कितने दिन में होगी ?

प्रश्न चन्द्रिका में रोगी की मृत्यु कितने दिन में होगी ? इसका विस्तार से विवेचन किया गया है। इस विषय में जो योग हमारे अनुभव में आये हैं, उनका संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है।

(i) लग्न से अष्टम और दशम में पाप ग्रह हों तो तीन दिन में रोगी की मृत्यु होती है।

(ii) गुरु और शुक्र तृतीय में हो तथा दशम पापग्रह हों तो सात दिन में मृत्यु होती है।

(iii) लग्न, चतुर्थ और अष्टम में पाप ग्रह हों तो आठ दिन में मृत्यु होती है।

(iv) तृतीय स्थान में सूर्य और दशम स्थान में पाप ग्रह हो तो दस दिन में मृत्यु होती है।

(v) चतुर्थ और दशम स्थान में पाप ग्रह हों तो दस दिन में मृत्यु होती है।

(vi) लग्न और द्वितीय में पाप ग्रह हो तो चौदह दिन में मृत्यु होती है।

यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि सर्वप्रथम रोगी की मृत्यु का योग भली-भाँति विचार कर तब उपर्युक्त योगों के आधार पर

दिन निश्चय करें।

रोगी के जीवित रहने के योग

(i) लग्नेश बलवान हो तथा शुभ ग्रह उच्च या मूल त्रिकोणराशि में केन्द्र में स्थित हो।

(ii) एक भी शुभ ग्रह बलवान होकर लग्न में बैठा हो और चन्द्रमा को देखता हो।

(iii) शुभ ग्रह ३, ६, ९ एवं ११वें स्थान में हों।

(iv) केन्द्र, त्रिकोण और अष्टम में शुभ ग्रह हों तथा चन्द्रमा उपचय स्थान में हो।

(v) लग्न और चन्द्रमा दोनों शुभ ग्रह से दृष्ट हों।

रोग विचार

रोग का निदान सामान्यतया अष्टम स्थान में स्थित ग्रह से किया जाता है। यदि अष्टम स्थान में कोई शुभ ग्रह न हो तो अष्टम स्थान पर जिस ग्रह की दृष्टि हो उससे रोग विचार करना चाहिए। यदि दृष्टि भी न हो तो अष्टमेश से रोग का विचार करना चाहिए। इस प्रकार जो ग्रह रोगकारक हो वह जिन रोगों का प्रतिनिधित्व करता है, उसके अनुसार रोग का निश्चय सरलतापूर्वक किया जा सकता है। ग्रह और उनके रोगों का विवरण इस प्रकार है :

ग्रह	रोग
सूर्य :	ज्वर, अतिसार पित्तविकार एवं हृदय रोग।
चन्द्रमा :	कफ, शीत, दमा, निमोनिया एवं तपेदिक।
मंगल :	दुर्घटना में चोट, बवासीर, रक्तचाप एवं ग्रन्थिस्राव।

बुध : सन्निपात, त्रिदोष, क्षय, मिरगी एवं मस्तिष्क को नस फटना।

गुरु : अजीर्ण, वमन, हैजा, गुल्म, पथरी एवं गैस।

शुक्र : जलोदर, पाण्डु, मधुमेह श्लेष्मा एवं गुप्त रोग।

शनि : स्नायविक दुर्बलता, लकवा, केन्सर व वायुविकार।

राहु : कुष्ठ, एलर्जी (शोथ) पौरुष ग्रन्थि का बढ़ना।

केतु : चेचक, ब्रण, रक्तविकार एवं संक्रामक रोग।

देव दोष विचार

यदि प्रश्न लग्न से ३, ६ एवं १२वें स्थान में पाप ग्रह हों तो रोग का हेतु किसी देवता का कोप, श्राप या अवज्ञा माननी चाहिए। इन पाप ग्रहों में से जो वलवान् हो तथा वह जिस राशि में स्थित हो उस राशि के अनुसार देवता का निश्चय निम्न चक्र के आधार पर कर लेना चाहिए।

राशि	देवता	राशि	देवता	राशि	देवता
मेष	कुल देव	सिंह	कुल देवी	धनु	यक्ष
वृष	पितृगण	कन्या	योगिनी	मकर	प्रेत
मिथुन	शाकिनी	तुला	यक्षिणी	कुम्भ	वरुण
कर्क	क्षेत्रपाल	वृश्चिक	नाग	मीन	इष्टदेव

चिकित्सा विचार

प्रश्नकुण्डली में लग्न चिकित्सक का, चतुर्थ औषधि का सप्तम रोग का और दशम रोगी का प्रतिनिधि भाव है। अतः यदि चतुर्थेश और दशमेश में मित्रता हो तो औषधि रोगी को लाभ करती है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार यदि लग्नेश और चतुर्थेश में मित्रता हो तों चिकित्सक रोगी को ठीक करने का यश प्राप्त करता है। यदि कदाचित सप्तमेश और दशमेश में मित्रता हो तो रोग दीर्घकाल तक रहता है। इस प्रसंग में एक और बात ध्यान देने योग्य यह है कि यदि लग्न में शुभ ग्रह हो तो निश्चित रूप से स्वास्थ्य लाभ होता है किन्तु यदि लग्न में पाप ग्रह हो तो रोग काफी समय तक रहता है।

२७. अथ दुर्गभंगद्वारम्

> पृच्छायां मूर्तिगे क्रूरे दुर्गभङ्गो न जायते।
> बलहीनेऽपि वक्तव्यं किं पुनर्बलशालिनि ॥११७॥

अर्थात् दुर्गभङ्ग के प्रश्न में लग्न में पाप ग्रह होने पर किला नहीं टूटता। निर्बल ग्रह होने पर ऐसा कहना चाहिए, बलवान् हो तो बात ही क्या है।

भाष्य : लग्न भाव दुर्ग, दुर्गपति या स्थायी का और सप्तम भाव आक्रामक या यायी का प्रतिनिधि भाव है तथा शत्रु का आक्रमण, गंभीर संकट, विवाद एवं युद्ध आदि के प्रश्न में लग्न में पाप ग्रह की स्थिति से विजय और पाप ग्रह की दृष्टि से पराजय होती है। अतः दुर्ग भंग के प्रश्न में प्रश्नकुण्डली में यदि पाप ग्रह स्थित हो तो दुर्ग एवं दुर्गपति पर शुभ प्रभाव

और आक्रामक पर अशुभ प्रभाव पड़ता है। परिणामतः लग्न में स्थित पाप ग्रह की स्थितिवश दुर्गभङ्ग नहीं होता। ग्रन्थकार का यह कथन सर्वथा तर्कसंगत है। यह पाप ग्रह कदाचित निर्बल भी हो तो किला नहीं टूटता। यदि वह बलवान हो तो दुर्गभङ्ग का प्रश्न ही नहीं उठता। इस विषय में प्रश्नशास्त्र के प्रायः सभी आचार्यों का यही मत है।

क्षितिपुत्रो विशेषेण राहुर्यदि विलग्नगः।
शक्रेणापि तदा दुर्गभंग कर्तुं न शक्यते॥११८॥

अर्थात् विशेष रूप से यदि मंगल या राहु लग्न में हो तो इन्द्र भी किला नहीं तोड़ सकता।

भाष्य: पिछले श्लोक में कहा गया है कि क्रूर ग्रह लग्न में होने पर दुर्गभङ्ग नहीं होता। अन्य पाप ग्रहों की अपेक्षा मंगल और राहु में पापत्व अधिक होता है। तथा ये दोनों ग्रह बल, सेना एवं सेनापति के प्रतिनिधि या प्रतीक भी हैं। अतः प्रश्न लग्न में मंगल या राहु की स्थिति प्रभाववश, सेना, सेनापति एवं प्रति-रक्षा व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ होने के कारण ही ग्रन्थकार ने कहा है कि इन्द्र भी किले को नहीं तोड़ सकता। अन्य आचार्यों ने भी इस मत को स्वीकार किया है।

सप्तमो यदि राहुः स्याद्दुर्गं झटिति भज्यते।
मूर्तौ क्रूरः शुभोऽमुष्मिन् क्रूरदृष्टिर्न शोभना॥११९॥

अर्थात् यदि सप्तम स्थान में राहु हो तो दुर्ग शीघ्र टूट जाता है। (क्योंकि) लग्न में पाप ग्रह शुभ होता है, पाप ग्रह की दृष्टि शुभ नहीं होती।

भाष्य : सप्तम स्थान आक्रामक का प्रतिनिधि भाव है। अतः सप्तम स्थान में जब राहु स्थित हो तो किला आसानी से टूट जाता है। इसका कारण ग्रन्थकार ने स्वयं स्पष्ट करते हुए कहा है कि दुर्ग भंग के प्रश्न में पाप ग्रह की स्थिति तो शुभ होती है किन्तु उसकी दृष्टि किसी भी स्थिति में शुभ या सहयोगी नहीं मानी जाती। राहु की सप्तम स्थान में स्थिति आक्रमण करने वाले को शुभ तथा उसकी लग्न पर दृष्टि दुर्ग के स्वामी पर अशुभ होती है। फलतः किला टूटना स्वाभाविक है। आचार्य नीलकण्ठ ने भी यही मत व्यक्त किया है।

मूर्ति सप्तमयोः क्रूराभावे लग्नपतिर्व्यये।
षष्ठेऽष्टमे द्वितीये वा तदा दुर्गं न भज्यते ॥१२०॥

अर्थात् लग्न और सप्तम में पाप ग्रह न होने पर यदि लग्नेश छटें, आठवें, बारहवें या दूसरे स्थान में हो तो किला नहीं टूटता।

भाष्य : लग्न और सप्तम में क्रूर ग्रह की स्थिति का फल पहले बताया जा चुका है। किन्तु यदि इन दोनों स्थानों में क्रूर ग्रह न हो तो लग्नेश की स्थिति से या सप्तमेश की स्थिति से दुर्ग भंग के प्रश्न का विचार करना चाहिए। इस प्रश्न के विचार के समय एक ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जिस प्रकार सामान्य नियम के विरुद्ध होते हुए भी क्रूर ग्रह की भाव में स्थिति यहाँ शुभ मानी गयी है उसी प्रकार भावेश की त्रिक स्थान एवं मारक स्थान में स्थिति को भी शुभ मानने में सामान्य रीति उल्लंघन किया गया है। तात्पर्य यह है कि इस प्रश्न में भावेश की त्रिक या मारक स्थान में स्थित होकर शुभ फल देता है। अतः यदि लग्नेश षष्ठ, अष्टम, द्वादश या द्वितीय (मारक) स्थान में

स्थित हो तो दुर्ग के स्वामी के लिए शुभ होने के कारण किला नहीं टूटता। आचार्य नीलकण्ठ ने यह योग लग्न और सप्तम दोनों में पाप ग्रह होते हुए भी माना है। उदाहरणार्थं निम्न-लिखित कुण्डली देखिए—

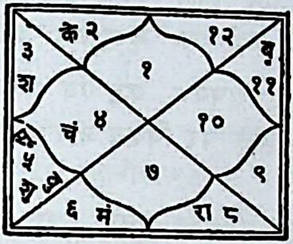

२८. अथ चौर्यादिस्थानद्वारम्

एवं चौर्याय यामीति मूर्तौ क्रूरः शुभावहः।
दृष्टि शुभावहाऽत्रापि न क्रूरस्य कदाचन ॥१२१॥

अर्थात् इसी प्रकार 'चोरी करने के लिए जाता हूँ' इस प्रश्न में लग्न में पाप ग्रह शुभ होता है किन्तु यहाँ पाप ग्रह की दृष्टि कदापि शुभ नहीं होती।

भाष्य : दुर्ग भङ्ग के प्रश्न में जिस प्रकार लग्न में पाप ग्रह की स्थिति शुभ और लग्न पर पाप ग्रह की दृष्टि अशुभ मानी गयी है। उसी प्रकार चोरी के प्रश्न में भी चोर के लिए लग्न में स्थित पापग्रह शुभ और उस पर पाप ग्रह की दृष्टि अशुभ मानी गयी है। शुभ ग्रह की लग्न में स्थिति से पाप फल किन्तु उसकी दृष्टि से शुभ फल मिलता है। इस प्रसंग में एक और बात ध्यान देने योग्य यह कि लग्नेश की लग्न पर दृष्टि होने पर या केन्द्र त्रिकोण स्थान में स्थिति होने पर चोरी में सफलता

मिलती है। किन्तु लग्नेश द्वितीय या त्रिक स्थानों में स्थित हो तो चोर को हानि, भय, बन्धन एवं मृत्यु आदि अशुभ फल मिलता है।

विवादे शत्रु हनने रणे संकटके तथा।
क्रूरे मूर्तौ जयो ज्ञेयः क्रूरदृष्ट्या पराजयः॥१२२॥

अर्थात् विवाद, शत्रुवध, युद्ध एवं संकट आदि प्रश्नों में लग्न में पाप ग्रह होने पर विजय और पाप ग्रह की दृष्टि से पराजय होती है।

भाष्य : विवाद, मुकद्दमा, चुनाव, शत्रु दमन, युद्ध, आकस्मिक संकट, अप्रत्याशित व्याधि एवं चोरी आदि समस्त उग्र कार्यों में लग्न में स्थित पाप ग्रह शुभ होता है। किन्तु लग्न पर पाप ग्रह की दृष्टि अशुभ होती है। प्रश्नशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में भी प्रायः यही बात कही गयी है।

अपरेष्वपि चौर्यादियोगेष्वेवं विना ग्रहम्।
मूर्तौ सर्वत्र वक्तव्यं चौर्यप्रश्ने शुभग्रहे॥१२३॥
मूर्तौ सति न चौर्यं स्यात्सफलं केवलं भवेत्।
शरीरे मुख्यकुशलं शुभ योग प्रभावतः॥१२४॥

अर्थात् चोरी आदि के अन्य योगों में भी इसी प्रकार लग्न में ग्रह न होने पर (फल) कहना चाहिए। चोरी के प्रश्न में लग्न में शुभ ग्रह होनेप र चोरी में सफलता नहीं मिलती। मात्र शुभ ग्रह के योग के प्र भाव से शरीर सकुशल रहता है।

भाष्य : चोरी आदि समस्त उग्र एवं पाप कर्मों में लग्न में पाप ग्रह न होने पर शुभ ग्रह की स्थितिवश फल का विचार

करते हुए आचार्य कहते हैं कि लग्न में शुभ ग्रह होने पर चोरी में सफलता नहीं मिलती है। केवल लग्न में शुभ ग्रह की स्थिति होने के कारण चोर शरीर से सकुशल या सुरक्षित रहता है। वादविवाद, मुकद्दमा, शत्रु दमन, युद्ध एवं अन्य संकट या जोखिम के कार्यों में भी शुभ ग्रह की लग्न में स्थितिवश असफलता ही प्राप्त होती है।

रणे चौर्यादि हनने धातुवादादिकर्मसु।
क्रूरा क्रूर समायोगाल्मूर्तावेव विचार्यते ॥१२५॥

अर्थात् युद्ध, चोरी, शत्रु हनन एवं धातुवाद आदि कार्यों में लग्न में पाप एवं शुभ ग्रहों के योग से इस प्रकार विचार किया जात है।

भाष्य : युद्ध, चोरी, शत्रु वध, मुकद्दमा, जुआ, तस्करी एवं अन्य आतंककारी, षडयन्त्रकारी या क्रान्तिकारी समस्त गति-विधियों में लग्न में पाप या शुभ ग्रह की स्थिति या दृष्टि के अनुसार विचार करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इन प्रश्नों के फलादेश का निश्चय केवल लग्न से ही कर लेना चाहिए अन्य भावों से नहीं। कारण यह है कि इन समस्त कार्यों में अवसर, संयोग या तात्कालिक परिस्थिति ही अधिकांशतया परिणाम की निर्णायक होती है तथा इनका प्रतिनिधित्व लग्न भाव करता है। अतः ग्रन्थकार का यह कथन युक्तिसंगत है।

चोरी गये धन का प्रश्न

चोरी-विचार के इस प्रसंग में चोरी गये धन से सम्बन्धी प्रश्न का भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा। यदि प्रश्नकुण्डली

में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो विद्वान दैवज्ञ को कहना चाहिए कि पृच्छक का प्रश्न चोरी गये धन से सम्बन्धित है।

(i) यदि लग्नेश ३, ६, ८ या १२वें भाव में हों।

(ii) सप्तमेश होकर मंगल या शनि ३, ६, ८ या १२ वें भाव में बैठा हो।

(iii) यदि सप्तमेश ६, ८ या १२वें स्थान में स्थित हो।

चोर विचार : यदि प्रश्न लग्न में स्थिर राशि, स्थिर राशि का नवांश अथवा वर्गोत्तम नवांश हो तो चोर प्रश्नकर्ता का सम्बन्धी होता है। यदि लग्न में चर राशि हो तो चोर बाहरी व्यक्ति होता है। और यदि लग्न में द्विस्वभावराशि हो तो चोर घर समीप रहने वाला होता है।

चोर कौन है : किस व्यक्ति ने चोरी की है? इसका निश्चय करने के लिए प्रश्नशास्त्र में अनेक योगों का प्रतिपादन किया गया है। इस विषय में कुछ महत्वपूर्ण योग इस प्रकार हैं :

(i) प्रश्नलग्न पर सूर्य और चन्द्रमा की दृष्टि हो तो चोर अपने घर का ही होता है।

(ii) प्रश्नलग्न पर सूर्य और चन्द्रमा से किसी एक की दृष्टि होने पर पड़ोसी चोर होता है।

(iii) लग्नेश और सप्तमेश दोनों प्रश्नलग्न में हों, तो चोर घर में रहने वाला होता है।

(iv) सप्तमेश ३ या १२वें स्थान में हो तो अपना नौकर चोर होता है।

(v) यदि सप्तमेश उच्च राशि या स्वराशि में हो तो चोर सुप्रसिद्ध (नामी) होता है।

(vi) यदि प्रश्न लग्न में स्थिर हो तथा बलवान सप्तमेश सूर्य हो तो घर के स्वामी का पिता चोर होता है। इसी प्रकार यदि उक्त योगकर्ता चन्द्रमा हो तो माता, शुक्र हो तो पत्नी, शनि हो तो पुत्र या नौकर, गुरु हो तो परिवार का मुखिया, मंगल हो तो पुत्र या भाई और बुध हो तो कोई सम्बन्धी या मित्र चोर होता है।

चोर की आयु : चोर की आयु का निर्णय करने के लिए आचार्य नीलकण्ठ ने एक सरल प्रकार बतलाया है—यदि योग कारक ग्रह शुक्र हो तो चोर युवावस्था का होता है। यदि योग कारक बुध हो तो बालक, गुरु हो तो प्रौढ़, मंगल हो तो युवक, शनि हो तो वृद्ध और सूर्य हो तो चोर अति वृद्ध होता है।

चोर किस जाति का है ? : चोर की जाति का निर्णय करने के लिए आचार्य पृथुयश्स एवं भट्टोत्पल ने लग्नेश को महत्व दिया है। लग्नेश ग्रह की जाति के अनुसार चोर की जाति का निश्चय करना चाहिए। ग्रहों में गुरु और शुक्र ब्राह्मण, सूर्य और मंगल क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, बुध शूद्र तथा शनि चाण्डाल जाति के प्रतिनिधि ग्रह हैं। अतः प्रश्न लग्न का स्वामी ग्रह जिस जाति का हो, चोर भी उसी जाति का कहना चाहिए।

चोर स्त्री है या पुरुष ? : चोर स्त्री है या पुरुष ? यह निश्चय करने के लिए सप्तमेश की स्थिति और उस पर दृष्टि आदि सूक्ष्म रीति से विचार कर लेना चाहिए। प्रश्न कुण्डली में यदि सप्तमेश स्त्रीराशि (समराशि) में स्थित हो, वह स्वयं स्त्री ग्रह हो या उस पर स्त्री ग्रहों की दृष्टि हो तो चोरी करने

वाली स्त्री होती है। यदि सप्तमेश पुरुष राशि (विषमराशि) में स्थित हो, वह पुरुष ग्रह हो या उस पर पुरुष ग्रह की दृष्टि हो तो चोरी करने वाला पुरुष होता है।

यह चोर है या नहीं ? : प्रश्नकर्ता का जिस व्यक्ति पर चोरी करने का सन्देह है, वह चोर है या नहीं ? यह निश्चय करने का आसान तरीका इस प्रकार है— यदि प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा पापग्रह से इत्थशाल करता हो तो सन्दिग्ध व्यक्ति चोर होता है और यदि वह शुभग्रह से इत्थशाल करता हो तो वह व्यक्ति चोर नहीं होता।

क्या इसने कभी चोरी की है ? इस प्रकार के प्रश्न में यदि लग्नेश या चन्द्रमा से सप्तमेश का इसराफ योग हो तो उक्त व्यक्ति ने पहले भी चोरी की है, यह जानना चाहिए।

चोरी की वस्तु कहाँ है ? : चोरी का सामान कहाँ है ? यह जानने के लिए सर्वप्रथम प्रश्न लग्न में चर, स्थिर एवं द्विस्वभाव राशि का विचार करना चाहिए। यदि लग्न में चर राशि हो तो चोरी का सामान घर के बाहर, स्थिर राशि हो तो घर में और द्विस्वभाव राशि हो तो घर के पास की खाली जमीन में होता है। घर में सामान होने का योग होने पर यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो दरवाजे के समीप, द्वितीय द्रेष्काण हो तो मकान के भीतर और तृतीय द्रेष्काण हो तो मकान के पिछले हिस्से में वह सामान होता है।

लग्न में चर और द्विस्वभाव राशि होने पर चतुर्थ स्थान में स्थित ग्रह के अनुसार स्थान का विचार करना चाहिए। यदि प्रश्न कुण्डली में चतुर्थ स्थान में शनि हो तो कूड़ा-करकट के ढ़ेर आदि गन्दी जगह, चन्द्रमा हो तो जलाशय के निकट,

गुरु हो तो देव मन्दिर या बाग में, मंगल हो तो अग्नि के समीप, सूर्य हो तो घर के स्वामी के बैठने के स्थान पर, शुक्र हो तो शयन कक्ष में और बुध हो तो पुस्तकालय, कोष या अनाज के गोदाम में चोरी का सामान होता है।

चोर पकड़ा जायेगा या नहीं : यदि प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा और सप्तमेश सूर्य से कालांश तुल्य अन्तर पर हों तो चोर पकड़ा जाता है। किन्तु वह पकड़ने के समय चोरी का सामान नष्ट कर चुका होता है। और यदि लग्नेश की सप्तम स्थान पर दृष्टि न हो तो चोर धन (चोरी के सामान) सहित पकड़ा जाता है। यदि लग्नेश सप्तमेश से इत्थशाल करता हो तो चोर राज भय से धन दे देता है।

चोरी का सामान मिलने के योग : यदि प्रश्न कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो चोरी का सामान अवश्य मिलता है—

(i) यदि पूर्ण चन्द्रमा या शुभ ग्रह लग्न में हो।

(ii) लग्न में शीर्षोदयराशि हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो।

(iii) लाभ स्थान में बलवान शुभ ग्रह हो।

(iv) यदि २, ३, ४, ५, ६, ७ एवं १०वें स्थान में शुभ ग्रह हों तो भी चोरी का कुछ सामान मिल जाता है।

चोरी का सामान न मिलने के योग : यदि प्रश्न कुण्डली में निम्नलिखित में से कोई एक हो तो, चोरी का सामान नहीं मिलता :

(i) लग्न पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो और लग्न पाप

ग्रह से युक्त या दृष्ट हो ।

(ii) लग्न, तृतीय, पंचम और सप्तम इन भावों में राहु, शनि, सूर्य या मंगल स्थित हो ।

(iii) लग्न में राहु और अष्टम में सूर्य हो ।

(iv) लग्न में सूर्य हो और चन्द्रमा नष्ट हो ।

मूर्तौ क्रूरग्रहः श्रेयाञ्छ्रेयसी क्रूरदृङ् न हि ।
शुभो न शोभनो मूर्तौ शुभदृष्टिस्तु शोभना ॥१२६॥

अर्थात् लग्न में पाप ग्रह शुभ किन्तु पाप दृष्टि शुभ नहीं होती । तथा लग्न में शुभ ग्रह शुभ नहीं होता किन्तु उसकी दृष्टि शुभ होती है ।

भाष्य : इस द्वार में प्रतिपादित पिछले समस्त श्लोकों का निष्कर्ष इस श्लोक में बतलाया गया है । युद्ध, शत्रुवध, विवाद, धातुकर्म, मुकद्दमा जुआ, तस्करी एवं अन्य समस्त उग्र, क्रूर या हिंसक कार्यों में फल या परिणाम का निश्चय करने की एक मात्र रीति यह है कि यदि लग्न में पाप ग्रह स्थित हो अथवा लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो इन कार्यों में सफलता मिलती है । किन्तु यदि प्रश्न लग्न में शुभ ग्रह हो या लग्न पर पापग्रह की दृष्टि हो तो इन कार्यों में निश्चित रूप से असफलता मिलती है । प्रायः सभी आचार्य इस मत से सहमत हैं ।

२९. अथ क्रय-विक्रयसमर्घमहर्घं द्वारम्

क्रेता लग्नपतिर्ज्ञेयो विक्रेताऽस्यपतिः स्मृतः ।
गृह्णाम्यहमिदं वस्तु सति प्रश्ने अमूदृशे ॥१२७॥

अर्थात् इस वस्तु को मैं खरीदूं या नहीं,—इस प्रश्न में

लग्नेश ग्राहक और लाभेश विक्रेता कहा गया है।

भाष्य : क्रय-विक्रय के प्रश्न में लग्नेश खरीदार और लाभेश बेचने वाला होता है। इन दोनों के बलाबल से क्रेता और विक्रेता को लाभ या हानि का निर्णय करना चाहिए। साधारणतया लग्न क्रय का और लाभ स्थान विक्रय का प्रतिनिधि भाव होता है। अतः इनके बलवान या निर्बल होने पर क्रय या विक्रय में लाभ अथवा हानि होती है। स्वयं ग्रन्थकार ने अपना यह आशय अगले श्लोकों में व्यक्त किया है। नीलकंठ एवं जीवनाथ आदि आचार्य भी इस मत से सहमत हैं।

बलशालि विलग्नं चेद् गृह्यते यत्क्रयाणकम्।
तस्मात्क्रयाणकाल्लाभः प्रष्टुर्भवति निश्चितम् ॥१२८॥
विक्रीणाम्यमुकं वस्तु प्रश्नेऽप्येवं विधे सति।
आयस्थाने बलवति विक्रेतव्यं क्रयाणकम् ॥१२९॥
शुभ स्वामियुते लाभे विक्रयाल्लाभमादिशेत्।
लाभेशे शुभ वर्गाढये मित्रक्षेत्रादिकेऽपि च ॥

(प्रश्न भूषण)

अर्थात् बलवान् लग्न होने पर जो वस्तु खरीदी जाती है, उससे प्रश्नकर्ता को लाभ होता है। 'मैं अमुक वस्तु बेचूं ?' इस प्रश्न में लाभ स्थान बलवान होने पर खरीदी वस्तु बेचनी चाहिए। शुभ ग्रह एवं स्वामी से लाभ स्थान युत होने पर तथा लाभेश के शुभ वर्ग या मित्रक्षेत्र में स्थित होने पर विक्रय से लाभ कहना चाहिए।

भाष्य : पहले कहा जा चुका है कि लग्न और लाभ भाव क्रमशः क्रय एवं विक्रय के प्रतिनिधि भाव है। अतः जब लग्न बलवान् हो, उस समय खरीदी गई वस्तु खरीदार को निश्चित

रूप से लाभदायक होती है लग्नेश के बलवान होने पर भी क्रेता (ग्राहक) को लाभ होता है। विक्रय के प्रश्न के समय यदि लाभ स्थान (एकादश भाव) बलवान हो तो खरीदी हुई वस्तु बेचने से विक्रेता को लाभ होता है।

यहाँ भाव के बल का निश्चित, भाव पर शुभ ग्रह एवं भावेश की युति या दृष्टि से करना चाहिए। और भावेश के बल का निर्णय उच्चराशि, मूल त्रिकोण, स्व राशि, मित्रराशि या शुभवर्ग में स्थिति के अनुसार कर लेना चाहिए। इस रीति से जब लाभस्थान या लाभेश बलवान् हो तो विक्रय से लाभ होता है और यदि लग्न या लग्नेश बलवान हो तो खरीदने से लाभ कहना चाहिए। भाव एवं भावेश के बलनिर्णय तथा क्रय-विक्रय से लाभ के इस प्रसंग में प्राय: सभी विद्वानों का लगभग यही मत है।

स्वक्षेत्रे तु बलं पूर्णं पादोनं मित्रभे ग्रहे।
अर्धं समगृहे ज्ञेयं पदं शत्रुगृहे स्थिते॥१३०॥

अर्थात्—स्वराशि में ग्रह का पूर्ण बल, मित्रराशि में पादोन (३/४) समराशि में आधा और शत्रुराशि में एक पाद (१/४) होता है।

भाष्य : क्रय-विक्रय से लाभ की मात्रा जानने के लिए विभिन्न राशियों में ग्रह के बल का तारतम्य बतलाया गया है। ग्रह अपनी राशि में हो तो पूर्ण बल, मित्र राशि में हो तो तीन चौथाई; समराशि में हो तो आधा और शत्रु राशि में हो तो उसका बल चतुर्थांश तुल्य होता है। यद्यपि शुभ और पाप दोनों प्रकार के ग्रहों के बल में यही तारतम्य रहता है

किन्तु उनके शुभ एवं पाप प्रभाव में विपरीत क्रम होता है उदाहरणार्थ स्वराशि में शुभ ग्रह पूर्ण शुभ फल, मित्रराशि में पादोन शुभ फल, समराशि में अर्ध शुभ फल और शत्रुराशि में एकपाद शुभ फल, देता है। किन्तु पापग्रह स्वराशि में एक पादपापफल मित्रराशि में अर्ध पापफल, समराशि में पादोन पाप फल और शत्रु राशि में पूर्णपाप फल देता है। अतः क्रय-विक्रय से लाभ एवं हानि की मात्रा निश्चित करते समय शुभ एवं पाप ग्रहों के फल के इस क्रम को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। अन्यथा विपरीत फलादेश की अधिक सम्भावना रहती है। बलतारतम्य के इस प्रसंग में वाराह मिहिर, कल्याणवर्मा एवं वैद्यनाथ आदि का भी यही मत है।

> समर्घं वा महर्घं वा वस्तु में कथयामुकम् ।
> पृच्छायां येन खेटेन शुभत्वं प्रतिपाद्यते ॥१३१॥
> खेटोऽसौ यावतो मासान् यति लग्नस्य सौम्यताम् ।
> विधत्ते तावतो मासान्समर्घं ब्रुवते बुधाः ॥१३२॥

अर्थात् वस्तु मन्दी होगी या तेज इस प्रश्न में जिस ग्रह से लग्न को शुभता मिले, वह ग्रह जितने मास तक लग्न को शुभत्व प्रदान करे, उतने मास तक वह वस्तु मन्दी रहेगी—

भाष्य : तेजी-मन्दी का निश्चय प्रश्नलग्न के बल को देख कर किया जाता है। लग्न अपने स्वामी या शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तथा केन्द्र में शुभ ग्रह हो तो वह बलवान होती है। यदि लग्न पाप ग्रहों से युत दृष्ट हो अथवा पाप ग्रह केन्द्र स्थान में हों तो वह निर्बल कही जाती है। इस प्रकार जो ग्रह जितने समय तक लग्न को बल या शुभत्व प्रदान करता है, उतने समय तक विचारणीय वस्तु मन्दी रहती है। अन्य आचार्य

भी इसी मत के समर्थक है।

अथासावशुभश्चिन्त्यः कियद्भिर्वासरैरयम्।
सौम्यभावं विलग्नस्य विधास्यति विनिश्चितम् ॥१३३॥
ज्ञातव्या दिवसैर्मासा मासैस्तावद्भिवरस्य हि।
समर्घता वस्तुनो हि प्रतिपाद्या विचक्षणैः ॥१३४॥

अर्थात् इसके बाद अशुभ ग्रह का विचार करना चाहिए कि यह कितने दिन में लग्न को शुभता प्रदान करेगा। इस रीति से जितने दिन आयें, उतने मास पर्यन्त वस्तु की समर्घता रहेगी—ऐसा विचार कहें।

भाष्य : यदि प्रश्न लग्न अपने स्वामी या शुभ ग्रह से दृष्ट-युक्त न हो और पापग्रह से दृष्ट-युक्त होने से अशुभ प्रभावग्रस्त हो तो विचारणीय वस्तु तेज होती है। यह पापग्रह का अशुभ प्रभाव लग्न पर जितने दिनों तक रहेगा, वस्तु भी बाजार में उतने समय तक तेजी का रुख पकड़ेगी। जब तक यह पाप प्रभाव समाप्त होकर लग्न पर शुभ प्रभाव नहीं पड़ना शुरू होगा, तब वस्तु मन्दी का रुख अपनायेगी। आशय यह है कि जितने दिनों लग्न पर शुभ प्रभाव रहेगा, उतने मास तक मन्दी और जितने दिनों तक लग्न पर पाप प्रभाव रहेगा, उतने दिन तक तेजी रहेगी। प्रश्नशास्त्र के प्रायः सभी आचार्यों ने इस मत को स्वीकार किया है।

अधिष्ठातुर्बलं ज्ञेयं लग्ने स्वामि विवर्जिते।
बलहीने त्वधिष्ठातुः प्राहुः स्वामिबले बलम् ॥१३५॥

अर्थात् लग्न के स्वामी से वर्जित होने पर वस्तु के प्रति-

निधि ग्रह से उसके बल का विचार करे। और वस्तु की स्वामी ग्रह के निर्बल होने पर लग्नेश के बल से लग्न का बल विचार करें।

भाष्य : समर्घ और महर्घ का विचार लग्न कें सबल और निर्बल होने से किया जाता है। लग्न के स्वामी एवं शुभ ग्रहों की लंग्न पर दृष्टि या युति उसे सबल तथा पाप की दृष्टि युति उसे निर्बल बनाती है। किन्तु यदि लग्न पर लग्नेश की दृष्टि या युति न हो तो जिस वस्तु की तेजी-मन्दी का विचार करना है, उसके स्वामी के बल से लग्न के बल का विचार करना चाहिए। यदि उस वस्तु का स्वामी भी निर्बल हो तो लग्नेश के बल से लग्न के बल का निश्चय करना चाहिए।

इस प्रकार लग्न, वस्तु के स्वामी ग्रह या लग्नेश के बल से लग्न के बल का निर्णय कर उसके अनुसार तेजी-मन्दी का निश्चय कर लेना चाहिए। वस्तु के स्वामी ग्रह की विस्तृत जानकारी के लिए तेजी मन्दी के ग्रन्थ अवलोकन करें। पाठकों के लाभार्थ संक्षेप में कौन ग्रह किस वस्तु का स्वामी है ? यह जानने के लिए एक चक्र पृष्ठ १४४ पर लिख रहे हैं :

क्रयाणकानां पृच्छायां सौम्या ज्ञेया महात्मभिः।
समर्घं सबलें लग्ने महर्घमबले पुनः ॥१३६॥
सौम्यदृष्टं स्वामि वृष्टं सौम्यकेन्द्रे युतं शुभैः।
सबलं ब्रुवते लग्नमबलं त्वन्यथा बुधाः ॥१३७॥

अर्थात् क्रय-विक्रय के प्रश्न में लग्न के बलवान होने पर मन्दा और निर्बल होने पर तेजी आती है, ऐसा महान आचार्यों

ने कहा है। लग्न शुभ ग्रह एवं स्वामी से (युत) दृष्ट तथा केन्द्र में शुभ ग्रह होने पर सबल होती है अन्यथा निर्बल।

ग्रह	वस्तुएं
सूर्य	सुगन्धि-द्रव्य, रस, चिकने पदार्थ
चन्द्रमा	रसदार पदार्थ, कपास एवं चाँदी
मंगल	चना, अरहर, मसूर, चावल एवं मूंग आदि
बुध	वंशपात्र एवं दालें
गुरु.	गेहूं, जो, सरसों, सोना, ईख एवं पीली वस्तु
शुक्र.	धानों के वीज एवं हाथी, घोड़ा, गाय आदि जीव
शनि.	उड़द, कोदों, कांगनी, नमक, तिल, एवं काली वस्तुएं

भाष्य : इन दो श्लोकों में तेजी-मन्दी के निर्णय का प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य सिद्धान्त बताया गया है। यदि प्रश्नकाल में लग्न बलवान हो, अर्थात् लग्नेश एवं शुभ ग्रह से युत दृष्ट और केन्द्र

में शुभग्रह बैठे हों तो वस्तु मन्दी होती है। इसके विपरीत यदि लग्न निर्बल हो—अर्थात् लग्नेश से दृष्टयुक्त न हो, अपितु पाप ग्रह से युतदृष्ट हो और पापग्रह केन्द्र में हो तो वस्तु तेज होती है। यह सिद्धान्त प्रश्नशास्त्र के सभी आचार्यों को मान्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डलियाँ देखिये :

यहां लग्न लग्नेश गुरु से युक्त और बुध से दृष्ट है। तथा चन्द्रमा केन्द्र में है। अतः लग्न के बलवान होने के कारण मन्दी (समर्घ) का योग है।

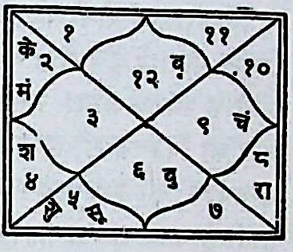

इस कुण्डली में लग्न पर लग्नेश शुक्र की दृष्टि नहीं है। अपितु मंगल और राहु की दृष्टि है। तथा ये दोनों केन्द्र में स्थित भी हैं। अतः लग्न निर्बल होने के कारण महर्घ (तेजी) का योग है।

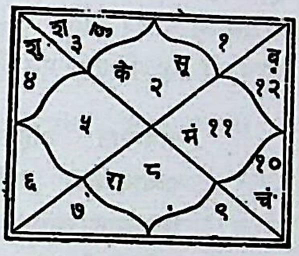

३०. अथ नौमृतिबन्धन द्वारम्

मृत्युर्धरणकं नौश्च फलेन सदृशं त्रयम्।
म्रियते येन योगेन तेन योगेन मुच्यते ॥१३८॥
क्षेमेण नौः समायाति मृत्यु योगे समागते।
आमयावी स म्रियते बद्धः शीघ्रेण मुच्यते ॥१३९॥

अर्थात् मृत्यु, बन्धन एवं नौका (जलयान) तीनों प्रश्नों का फल समान होता है। जिस योग से मृत्यु होती है, उसी योग

से मुक्ति होती है। मृत्युयोग आने पर जहाज सकुशल आता है, रोगी मरता है और बन्दी शीघ्र छुटकारा पाता है।

भाष्य : नौका (जलयान), बन्धन एवं मृत्यु इन तीनों प्रश्नों में फलादेश समान रीति से किया गया है। कारण यह है कि इन प्रश्नों मे नौका की यात्रा से निवृत्ति, बन्दी की बन्धन से निवृत्ति एवं रोगी की रोग तथा रोग के मूल शरीर से निवृत्ति प्रमुख घटनायें हैं। अत: ये प्रश्न अधिकांशतया निवृत्ति मूलक होने के कारण प्राय: समान प्रकृत्ति के हैं। परिणामत: इनके फल का निश्चय भी समान रीति से किया जाता है। इसलिए ग्रन्थकार का यह कथन— कि जिस योग में रोगी की मृत्यु होती है उसी योग में जहाज सकुशल वापिस आता है और वन्दी बन्धन मुक्त हो जाता है— पूर्णरूपेण युक्तियुक्त है। अन्य आचार्यों का भी यही मत है।

क्षेमायात बहित्रस्य वुडनं प्लवनं जले।
पण्यव्यवहृतो लब्धिर्नावि प्रश्नचतुष्टयम् ॥१४०॥
क्षेमागयनपृच्छायां मृत्युयोगोऽस्ति चेत्तदा।
क्षेमेणायाति नौः पण्यलाभो व्यवहृतौ भवेत् ॥१४१॥

अर्थात् नौका की सकुशल वापिसी, जल में डूबना, भटकना और नौका से लाये गये सामान से लाभ, नौका विषयक ये चार प्रश्न होते हैं। सकुशल वापिसी के प्रश्न में यदि मृत्युयोग हो तो नौका कुशलतापूर्वक आती है और लाये हुए सौदा से व्यापार में लाभ होता है।

भाष्य : नौका या पानी के जहाज से सम्बन्धी ४ प्रमुख योग होते हैं : १. विदेश से सकुशल वापिस लौटना २. समुद्र में

डूबना, ३. तूफान, दिशा भ्रम या अन्य परिस्थितियों में समुद्र में भटकना और ४. जहाज में लाये गये सामान से व्यापार में लाभ होगा। इन चारों प्रश्नों का विस्तारपूर्वक विचार प्रश्न शास्त्र के सभी ग्रन्थों में किया गया है।

जहाज की सकुशल वापसी के प्रश्न में यदि प्रश्नकुण्डली में मृत्यु योग हो तो जहाज कुशलतापूर्वक स्वदेश आ जाता है और लादे गये सौदे से व्यापार में लाभ होता है। पिछले श्लोक में बतलाया जा चुका है कि मृत्यु बन्धन एवं नौका इन प्रश्नों के फलादेश की रीति समान होती है। इसलिए मृत्यु योग में जहाज की वापसी कही है। नीलकण्ठ का भी यही मत है।

नेक्षते लग्नपो लग्नं मृतिपो नेक्षते मृतिम्।
यानपात्रस्य वक्तव्यं निश्चितं बुडनं तदा॥१४२॥
लग्नपश्चाष्टमस्थानाधिपतिर्वा भवेद्यदि।
सप्तमे कथयन्त्यन्तर्जले वापकिनं तदा॥१४३॥

अर्थात् यदि लग्नेश लग्न को और अष्टमेश अष्टम स्थान को न देखे तो जहाज निश्चित रूप से डूब गया—ऐसा कहना चाहिए। यदि लग्नेश या अष्टमेश सप्तम भाव में हो तो नौका समुद्र में भटक रही है।

भाष्य : नौका के प्रश्न में यदि लग्नेश लग्न को और अष्टमेश अष्टम भाव को न देखें तो जहाज डूब गया है यह जानना चाहिए। और यदि लग्नेश या सप्तमेश सप्तम भाव में हों तो नौका जल के अन्दर (समुद्र में) तूफान दिशा भ्रम या अन्य उपद्रववश भटक रही है—ऐसा फलादेश कहना चाहिए। अन्य आचार्यों का भी यही कहना है।

नीचस्थोऽस्तमितो वा मत्युपतिर्नवमगो रिपुक्षेत्रे।
नीचो वा भवति यदा व्यवहृतलाभो भवेन्न तदा ।।१४४।।

अर्थात् यदि अष्टमेश नीचराशि या अस्तगंत होकर नवम स्थान में स्थित हो अथवा वह नीच या शत्रु राशि में होकर किसी भी भाव में स्थित हो तो (जहाज द्वारा लाये गये सौदे के) व्यापार से लाभ नहीं होता।

भाष्य : अष्टम स्थान नौका का स्थान है। अत: नवम स्थान नौका का व्यापार या धन स्थान है। यदि प्रश्नकाल में अष्टमेश अपनी नीच राशिगत या अस्तंगत होकर नवम स्थान में बैठा हो, तो नौका (जहाज) द्वारा लाये गये सामान से धनं लाभ नहीं होता। यही फल अष्टमेश के नीच राशि या शत्रु राशि में कहीं भी स्थित होने पर होता है। कुछ आचार्यों ने लग्नेश एवं अष्टमेश इन दोनों से समुद्री-व्यापार में लाभ-हानि का विचार किया है। उनके अनुसार यदि ये दोनों उच्च स्व-राशि या मित्रराशि में हों तो लाभ तथा नीचराशि या शत्रु राशि में हों तो हानि होती है।

३१. अथातीतदिन लाभादिद्वारम्

लग्ने यदिह विचारो भवति नवांशकगतैर्ग्रहैस्तत्र।
बीजं गुरुपदेशों लग्ननवांशोऽन्यथायुक्तम् ।।१४५।।
तत्तन्नवांशकगतान्खेचरान्नयस्य तद्दिने लग्ने।
प्रष्टुरवधार्य गणकैवच्यिमतिक्रान्तदिनवृत्तम् ।।१४६।।

अर्थात व्यतीत दिन के विचार के सम्बन्ध में जो विचार लग्न द्वारा होता है वही नवांशों में स्थित ग्रहों द्वारा होता है।

इसमें गुरु का उपदेश ही बीज है। उस दिन के लग्न में समस्त ग्रहों को अपने-अपने नवमांशों में स्थापितकर तथा उनके आधार पर विचार कर प्रश्नकर्ता को दैवज्ञ फल बताये।

भाष्य : पहले बताया जा चुका है कि समस्त प्रश्नों में चन्द्रमा बीज, लग्न पुष्प, नवांश फल एवं भाव उसके स्वाद के समान है। अतः समस्त प्रश्नों का विचार प्रश्नलग्न, चन्द्रमा, नवांश और भाव द्वारा किया जाता है। किन्तु व्यतीत दिनों का ज्ञान करने के प्रश्न में फल विचार प्रश्न लग्न एवं नवांश के आधार पर करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इस प्रश्न में प्रश्नकुण्डली एवं नवांशकुण्डली दोनों का समान रूप से विचार कर फलादेश करें।

पूर्वोक्त नवांशचक्र की सहायता से स्पष्ट लग्न एवं स्पष्ट ग्रहों को अपने-अपने नवांश में स्थापित कर नवांश कुण्डली वनाना सुगम है। इस रीति से बनायी गयी कुण्डली में यदि ग्रह उच्चराशि, स्वराशि या मित्रराशि के नवांशों में हों तो शुभ और यदि नीच राशि या शत्रु राशि के नवांशों में हों तो अशुभ फल कहना चाहिए। इससे व्यतीत दिनों के विविध प्रश्नों का शुभाशुभ फल निश्चय किया जा सकता है। यह शुभाशुभ फल कितने दिन रहेगा ? इसे निर्णय करने की रीति यह है— जितने दिन ग्रह एक नवांश पर रहता है, उतने दिन तक वह अपना अच्छा या बुरा फल देता है। ग्रहों के एक नवांश में स्थित रहने की दिन संख्या की जानकारी के लिए चक्र देखिये :

नवांश भोगदिनादिज्ञानाय चक्रम्

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
मास	०	०	०	०	१	०	३	२	२
दिन	३	०	५	३	१३	३	१०	०	०
घटी	२०	१५	०	२०	२०	२०	०	०	०

३२. अथ लग्नेशांशलाभद्वारम्

लग्नपतिर्यत्रांशे पृच्छालग्ने तमंशमवलोक्य ।
लग्नाधिपांशलग्नांशनाथयोर्दृग्युतिसुहृत्त्वम् ॥१४७॥
यत्र स्यात्तत्र भवेत्सुन्दरता तनुधनादि भावेषु ।
यावल्लग्नाधिपतेरंशकालः स कालश्च ॥१४८॥
संचार्योऽसौ तावद्यावत् पूर्णा भवन्ति ते भावाः ।
मासफलं सम्पूर्णं जातं लग्नाधिपात्तदिदम् ॥१४९॥

अर्थात् प्रश्न लग्न में लग्नेश जिस नवमांश में हो उसे देख कर लग्नेश के नवांश स्वामी और लग्न के नवांश स्वामी में दृष्टि, युति एवं मित्रता हो तो लग्नधनादि भावों की वृद्धि होती है। तथा काल की अवधि लग्नेश के नवांशकाल तक जाननी चाहिए। यह काल तब तक चलना चाहिए जब तक ये भाव सम्पूर्ण हो जाए तथा वह कार्य जितनी संख्या पर भाव से लग्नेश हो, उतने मास में पूर्ण होता है।

भाष्य : कार्यसिद्धि की कालावधि का निश्चय करने के लिए ग्रन्थकार ने दो रीतियाँ बतलायी हैं। प्रथम रीति यह है कि प्रश्न लग्न के नवमांश स्वामी और लग्नेश के नवमांश स्वामी में मित्रता, युति या दृष्टि होने पर इन दोनों के अन्तरतुल्य काल में कार्य की सिद्धि होती है। सूर्यादि ग्रहों का काल क्रमश: अयन, क्षण (२ घटी), दिन, ऋतु (२ मास), मास, पक्ष एवं वर्ष बतलाया गया। राहु और केतु का काल यथाक्रमेण आठ मास एवं तीन मास माना गया है। अत: लग्ननवांशस्वामी से लग्नेश नवांश स्वामी तक गणना द्वारा प्राप्त अन्तर को लग्नेश ग्रह के काल से गुणा कर कालावधि का निश्चय किया जाता है। उदाहरणार्थ मीन राशि के १५ अंश २५ कला स्पष्टलग्न के समय प्रश्न किया गया। उस समय गुरु स्पष्ट ११/२७/१/४० था तथा प्रश्न कुण्डली निम्नलिखित थी :

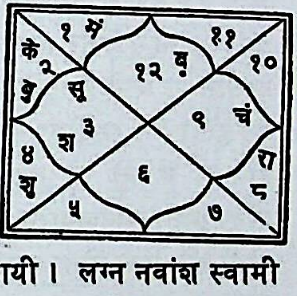

यहाँ प्रश्न लग्न में वृश्चिक नवांश है अत: नवांशस्वामी मंगल है। तथा गुरु मीन के नवमांश में होने के कारण स्वयं ही नवांश स्वामी भी है। अत: लग्न नवांश वृश्चिक से लग्नेश नवांश मीन तक गणना करने से ५ संख्या आयी। लग्न नवांश स्वामी मंगल का काल दिन होता है। अत: निश्चय किया गया कि पाँच दिन में कार्य सिद्धि होगी।

द्वितीय रीति के अनुसार लग्नेश जिस भाव से मित्रता, युति या दृष्टि रखता है; लग्नेश से उस भाव तक गणना कर संख्या ज्ञात करें। इस संख्या तुल्य मासों में कार्य की सिद्धि

होती है। किन्तु ग्रन्थकार की यह दूसरी रीति प्रश्नशास्त्र के अन्यआचार्यों को मान्य नहीं है। प्रथम रीति अवश्य सर्वसम्मत है।

३३. अथ द्रेष्काणादिद्वारम

द्रेष्काणे यत्र लग्नं स्याद्द्वाविंशतितये ततः।
द्रेष्काणे यदि लग्नेशः पृच्छायां तन्मृति ध्रुवम् ॥१५०॥

अर्थात (रोगी के) प्रश्न में जिस द्रेष्काण में लग्न हो, उससे २२वें द्रेष्काण में कदाचित लग्नेश हो तो निश्चित रूप से मृत्यु होती है।

भाष्य ; राशि के तृतीय भाग को द्रेष्काण कहते हैं। प्रत्येक द्रेष्काण १० अंश का होता है। राशि में १ अंश से १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण, ११ अंश से २० अंश तक द्वितीय द्रेष्काण और २१ अंश से ३० अंश तक तृतीय द्रेष्काण होता है। इस प्रकार लग्न से लेकर सप्तम भाव तक में राशियों में २१ द्रेष्काण व्यतीत हो जाते हैं। और २२वाँ द्रेष्काण सदैव अष्टम स्थान का होता है। इसलिए यदि लग्नेश लग्न के द्रेष्काण से २२वें द्रेष्काण में हो तो वह अष्टमभाव में स्थित होता है। परिणामत: लग्नेश मृत्यु भाव (अष्टम) में होने के कारण रोगी की मृत्यु होना कहा गया है।

लग्नपो मृत्युपश्चापि लग्ने स्यातामुभौ यदि।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिंस्तदा मूर्तिर्निरामया ॥१५१॥
लग्नपो मृत्युपश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिस्तदा मृत्युर्न संशयः ॥१५२॥

अर्थात् यदि लग्नेश और अष्टमेश दोनों लग्न में एक ही द्रेष्काण में हों तो शरीर स्वस्थ रहता है। यदि लग्नेश और

अष्टमेश दोनों अष्टम भाव में एक ही द्रेष्काण में स्थित हों तो निःसन्देह मृत्यु होती है।

भाष्य : लग्न स्वास्थ्य एवं शरीर का प्रतिनिधि भाव है। यह भाव अपने स्वामी से युक्त होने पर उसकी अभिवृद्धि करता है। अतः लग्नेश की लग्न में स्थिति स्वास्थ्य एवं शरीर सुख के लिए शुभता-सूचक है। अष्टम स्थान मृत्यु का प्रतिनिधि-भाव है। इस भाव का स्वामी भाव से छठे (लग्न) स्थान में बैठकर भावफल का नाश करता है। इसलिए अष्टमेश की लग्न में स्थिति मृत्यु एवं रोगनाशक होती है। यही कारण है कि लग्नेश और अष्टमेश दोनों लग्न में स्थित होकर रोग एवं मृत्यु के नाशक तथा स्वास्थ्यवर्धक माने गये हैं। यदि ये दोनों एक ही द्रेष्काण में साथ-साथ स्थित हों तो शरीर को निरोग और स्वस्थ करते हैं।

लग्नेश की अष्टम या २२वें द्रेष्काणं में स्थिति मृत्युदायक कही गयी है। यदि मृत्यु भाव का प्रतिनिधि ग्रह अष्टमेश स्व-स्थान में बैठकर इसे और बल देता हो तो इस स्थिति में व्यक्ति की मृत्यु होना सुनिश्चित है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए ग्रन्थकार ने बतलाया है कि लग्नेश और अष्टमेश दोनों यदि प्रश्नलग्न से अष्टम स्थान में एक ही द्रेष्काण में स्थित हों तो निश्चित रूप से मृत्यु होती है। उदाहरणार्थ कुण्डली देखिये :

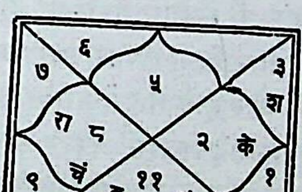

यहाँ लग्नेश सूर्य मीन के १६° अंश पर और अष्टमेश गुरु मीन के ११° पर स्थित होने के कारण मीन के द्वितीय द्रेष्काण में हैं। तथा ये दोनों अष्टम स्थान में साथ-साथ स्थित हैं। अतः मृत्युकारक हैं।

लग्नपो लाभपश्चापि लाभे स्यातामुभौ यदि।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्प्रष्टुर्लाभस्तदा ध्रुवम् ॥१५३॥
लग्नपः पुत्रपश्चापि पुत्रे स्यातामुभौ यदि।
स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन्पुत्रप्राप्तिस्तदा भवेत् ॥१५४॥
एवं द्वादशभावेषु द्रेष्काणैरेव केवलैः।
बुधो विनिश्चितं ब्रूयाद्भावेष्वन्येषु निस्पृहः ॥१५५॥

अर्थात् यदि लग्नेश एवं लाभेश दोनों लाभ स्थान में एक ही द्रेष्काण में हों, तो पृच्छक को निश्चित रूप से लाभ होता है यदि लग्नेश और पञ्चमेश दोनों पञ्चम स्थान में एक ही द्रेष्काण में बैठे हों तो पुत्र प्राप्ति होगी। इस प्रकार द्वादशभावों में केवल द्रेष्काणों के द्वारा फल कहना चाहिए तथा अन्य प्रश्नों पर विचार करना चाहिए।

भाष्य : लग्नेश और कार्येश दोनों यदि कार्य भाव में स्थित हों, तो कार्य की सिद्धि होती है। इसी सिद्धांत के आधार पर यदि लग्नेश और लाभेश (कार्येश) ये दोनों यदि लाभ (कार्य) स्थान में स्थित हों तो लाभ का पूर्णयोग बनता है। वस्तुतः लग्नेश लेने वाला और लाभ देने वाला है। अतः इन दोनों का योग निश्चित रूप से लाभप्रद है। यदि ये दोनों ग्रह एक ही द्रेष्काण में स्थित हों तो पूर्णलाभ का योग बनता है। इसी रीति से लग्नेश और पंचमेश का पंचम भाव में एक द्रेष्काण में योग होने से पुत्र प्राप्ति का पूर्णयोग बनता है। ग्रन्थकार का कहना है कि इसी प्रकार लग्नेश और दशमेश के एक स्थान में एक द्रेष्काण में योग होने से राज्यलाभ तथा लग्नेश और धनेश के एक स्थान में एक द्रेष्काण में स्थित होने पर धन लाभ होता

है। यह एक ऐसा नियम है कि जिसके आधार पर सभी भावों के फल का विचार किया जा सकता है।

प्रश्नकाले सौम्यवर्गो यदि लग्नेऽधिको भवेत्।
ग्रह भावानपेक्षिण तदाख्येयं शुभं फलम् ॥१५६॥
प्रश्नकाले क्रूरवर्गो लग्ने यद्यधिको भवेत्।
अशुभं फलमाख्येयं ग्रहापेक्षां बिना तदा ॥१५७॥

अर्थात् प्रश्नकालीन लग्न में यदि शुभवर्ग अधिक हो तो अन्य भावादि का विचार किये बिना ही शुभफल कहना चाहिए यदि प्रश्न लग्न में पाप ग्रह का वर्ग अधिक हो तो ग्रह आदि का विचार किये बिना ही अशुभ फल बतलाना चाहिए।

भाष्य : ग्रहों का बल निश्चित करने के लिए ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने षोडशवर्ग, सप्तवर्ग एवं षट्वर्ग की कल्पना की है। किन्तु प्रश्नशास्त्र में षोडश एवं सप्तवर्ग को ग्राह्य नहीं माना गया। अतः यहाँ षड्वर्ग का ही विचार किया जाता है। ये छः वर्ग हैं १. गृह (लग्न), २. होरा, ३. द्रेष्काण, ४. नवमांश ५. द्वादशांश, और ६ त्रिशांश। इन छः वर्गों का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के सामान्य ग्रन्थों से कर लेना चाहिए। यदि प्रश्नलग्न में चन्द्रमा, बुध, गुरु एव शुक्र का षड्वर्ग हो या इन ग्रहों के वर्ग की अधिकता हो तो भाव एवं ग्रह आदि का विचार किये बिना ही कार्यसिद्धि आदि शुभ फल कहना चाहिए। और यदि प्रश्न लग्न में सूर्य, मंगल, शनि एवं राहु का षड्वर्ग हो या इन ग्रहों के वर्ग का आधिक्य हो तो कार्य की असिद्धि आदि अशुभ फल बतलाना चाहिए। प्रश्न लग्न शुभ और पाप दोनों प्रकार के ग्रहों के वर्ग समान रहने पर कष्ट और विलम्ब से कार्य में सफलता मिलती

है। यही बात आचार्य पृथुयशास एवं भट्टोत्पल ने कही है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डलियाँ देखिये :

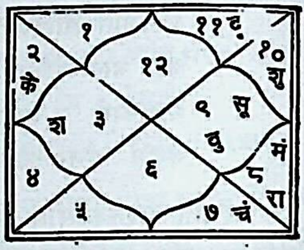

यहाँ लग्न मीन राशि के २°/१०' है। अत षड्वर्ग की स्थिति इस प्रकार है : लग्न स्वामी गुरु, होरेश चन्द्र, द्रेष्काणेश गुरु नवांशेश चन्द्र द्वादशांशेश गुरु एवं त्रिशांशेश शुक्र है।

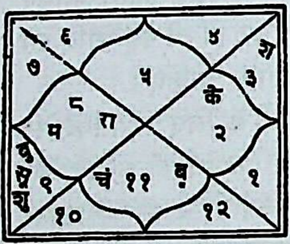

अत: यहाँ शुभ ग्रहों का षड्वर्ग होने के कारण प्रश्न कुण्डली में ग्रह एवं भावों की स्थिति का विचार किये बिना ही कार्य की सफलता कहनी चाहिए।

दूसरी कुण्डली में लग्न सिंह राशि २३° अंश तथा २७ कला हैं। अत: षड् वर्ग की स्थिति निम्नलिखित है—लग्नेश=सूर्य; होरेश=सूर्य; द्रेष्काणेश=मंगल; नवमांशेश=मंगल; द्वादशांशेष=शुक्र और त्रिशांशेश मंगल है। इसलिए यहाँ पापग्रहों के वर्ग की अधिकता के कारण कार्य में असफलता का योग बनता है। यद्यपि लग्न पर शुभ ग्रहों (चन्द्रमा, गुरु) की दृष्टि है और लग्नेश सूर्य भी शुभ ग्रहों (बुध, शुक्र) के साथ बैठा है। तथापि यहाँ इनका विचार न कर केवल पाप वर्गों की अधिकता के आधार पर कार्य में विघ्न बाधा एवं असफलता बतलानी चाहिए।

३४. अथ देवदोषद्वारम्

मूर्तौ छिद्रे द्वादशेऽर्को व्यये कर्मणि भूसुतः।
षष्ठान्त्याद्याष्टमश्चन्द्रो व्ययास्ते शेष खेचराः ॥१५८॥
क्षेत्राधिपाकाशदेवी शाकिन्या द्याश्च देवताः।
देवदोषाम्बु देवात्मव्यंतरामिहरादय ॥१५९॥

अर्थात् लग्न, अष्टम या द्वादश स्थान में सूर्य, द्वादश या दशम स्थान में मंगल, षष्ठ, व्यय, लग्न या अष्टम में चन्द्रमा और शेष ग्रह व्यय या सप्तम स्थान में हों तो क्षेत्रपाल, आकाश देवी, शाकिनी आदि. देव दोष, जलदेव, आत्मा एवं प्रेतादि की बाधा होती है।

भाष्य : आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकार के दुःख या कष्टों का कारण हम पर सदैव पड़ने वाला ग्रहों का प्रभाव है। ग्रह अपनी प्रकाश रश्मि एवं गुत्वाकर्षण रश्मियों द्वारा हम पर सदैव प्रभाव डाल रहे हैं। यह प्रभाव इतना सूक्ष्म होता है कि इसे हम तुरन्त अनुभव नहीं कर पाते। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध-ग्रन्थ रत्न भाव प्रकाश में कहा गया है कि "जिस प्रकार दर्पण में छाया, प्राणियों सर्दी और गर्मी, सूर्यकान्त मणि में सूर्य का तेज प्रवेश करता है, किन्तु दिखलाई नहीं देता। उसी प्रकार शरीरधारियों में (अज्ञात रूप से) ग्रहों का प्रभाव प्रवेश करता है।" इसलिए ग्रह स्थिति के आधार पर त्रिविध दुःखों का निदान किया जाता है।

रोग, भय, मृत्यु, सन्तान एवं लाभादि में किस देवता का दोष है ? यह जानने के लिए ग्रन्थकार ने उक्त दो श्लोकों में कुछ योगों का विचार किया है। यदि प्रश्न कुण्डली में सूर्य लग्न

अष्टम या द्वादश स्थान में हो तो क्षेत्रपाल का दोष होता है। दशम और द्वादश स्थान में मंगल होने पर आकाशदेवी (यक्षिणी) का; लग्न या त्रिक् स्थानों में चन्द्रमा होने पर शाकिनी का; सप्तम या द्वादश स्थान में क्रमशः बुध, गुरु, शुक्र, शनि एवं राहु होने पर यथाक्रमेण वन देवता, पितृगण, जलदेव, गृहदेव (कुल देव) एवं प्रेत आदि का दोष जानना चाहिए।

उक्त रीति से दोष या बाधाकारक देव का निश्चय हो जाने पर मन्त्र, अर्चना, बलि (उपहार) यज्ञ एवं स्तवन आदि से देवोपासना करने से वह देवता प्रसन्न होकर कल्याणकारी हो जाता है। इस प्रसंग में यह ध्यान रखने योग्य बात है कि यदि उक्त दोष साध्य होता है, तो इन उपायों से सफलता मिलती है। यदि वह असाध्य हो तो उपाय भी निष्फल जाते हैं। आचार्य नीलकण्ठ ने देव-दोष के साध्यत्व एवं असाध्यत्व का निश्चय इस प्रकार किया है "यदि केन्द्र में बलवान् पाप ग्रह हों तो देव दोष असाध्य होता है और यदि केन्द्र में बलवान् शुभ ग्रह हों तो साध्य होता है।" इस रीति से साध्यासाध्यत्व का विचार कर उपाय करना चाहिए।

३५. अथ दिनचर्याद्वारम्

यवीन्दुर्दिनचर्यायां शुभः स्यादुदयास्तयोः।
श्रेयांस्तदाऽव गन्तव्यं सकलोऽपि हि वासरः ॥१६०॥

अर्थात् दिनचर्या के प्रश्न में यदि चन्द्रमा उदय और अस्त-काल में शुभ हो तो पूरा दिन शुभ जानना चाहिए।

भाष्य : प्रश्नशास्त्र में सभी प्रकार के प्रश्नों का शुभाशुभ फल निश्चय करने के लिए चन्द्रमा, लग्न, नवांश एवं भाव इन

चारों का गम्भीरतापूर्वक चिन्तन किया जाता है। चारों में भी कार्यसिद्धि का बीज होने के कारण चन्द्रमा अपना विशेष प्रभाव एवं महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सम्भवत: इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए दिनचर्या जैसे तात्कालिक प्रश्न में केवल चन्द्रमा के आधार पर शुभाशुभ फल का निश्चय किया है।

प्रश्नकाल में चन्द्रमा शुभ स्थान में शुभ ग्रहों से युत यादृष्ट हो तो शुभफलदायक, नेष्ट स्थान में पापग्रहों से युत दृष्ट हो तो पापफलप्रद एवं शुभ और पाप दोनों प्रभाव के स्थान और ग्रह के प्रभाववश मिश्रित फल देता है। दिनचर्या के प्रश्न में उदय काल और अस्तकाल में शुभ चन्द्रमा होने पर पूरा दिन शुभ कहना चाहिए। यदि चन्द्रमा पाप या मिश्रित हो तो वैसा फलादेश करना चाहिए। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कुण्डली देखिये :

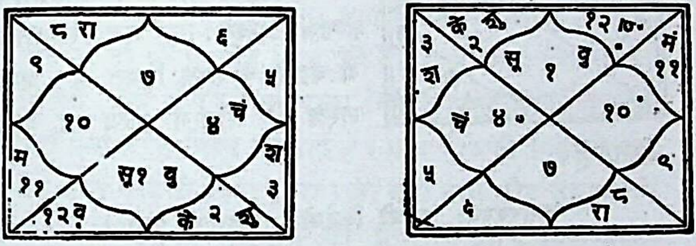

दिनचर्या के प्रश्न में सूर्योदय एवं सूर्यास्त काल की दोनों उक्त कुण्डलियों में चन्द्रमा स्वराशि केन्द्र स्थान में स्थित और गुरु से दृष्ट हैं। अत: पूरा दिन शुभ रहने का योग है।

राहौ वाथ कुजे क्रूरे परस्मिन्नपि खेचरे।
अष्टमे स्वगृहे चैव दिने चन्द्रेऽसिना वधः॥१६१॥

अर्थात् यदि राहु, मंगल या अन्य पापग्रह स्वराशि में

अष्टम स्थान में हो और चन्द्रमा भी अष्टम में हो तो उस दिन तलवार, छुरा आदि से मृत्यु होती है।

भाष्य : अष्टम स्थान में अष्टमेश की स्थिति मृत्यु भाव को बलवान् बनाती है। यदि कोई पाप ग्रह अष्टमेश होकर अष्टम में हो तो यह योग और भी उग्र बनता है। अतः दिनचर्या के प्रश्न में इस प्रश्न का निर्णायक चन्द्रमा किसी पापी अष्टमेश के साथ अष्टम स्थान में हो तो पूर्ण रूपेण मृत्यु का योग बनता है। पाप ग्रहों में से मंगल और राहु शस्त्र के प्रतिनिधि ग्रह हैं। इसलिए ग्रन्थकार का यह कथन ठीक है कि यदि मंगल अथवा राहु

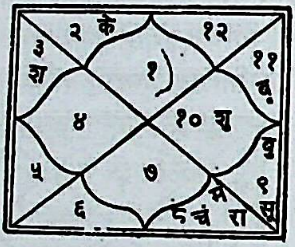

स्वराशि में अष्टमस्थान में चन्द्रमा के साथ हो तो व्यक्ति की मृत्यु तलवार आदि शस्त्र से होती है। कुण्डली देखिये : यहाँ मंगल स्वराशि में चंद्रमा के साथ स्थित है। अतः शस्त्र की चोट से मृत्यु का योग बनता है।

> **दन्तुरवदनः कृष्णो विज्ञेयो राहुदर्शने प्राणी।**
> **षष्ठेऽष्टमे च जीवः कथयति च सन्निपात रुजम् ॥१६२॥**

अर्थात् राहु की दृष्टि होने पर व्यक्ति काले रंग का और बड़े दाँत वाला होता है तथा षष्ठ एवं अष्टम में गुरु हो तो सन्निपात रोग कहना चाहिए।

भाष्य : जातक ग्रन्थों में राहु का स्वरूप काला और बड़े दाँत वाला बताया गया है। अतः उसकी प्रश्नलग्न पर दृष्टि होने से व्यक्ति का स्वरूप भी वैसा ही होता है। छठे और आठवें स्थान

में गुरु होने पर उदर विकार या सन्निपात रोग होता है। क्योंकि गुरु इन रोगों का कारक है।

३६. **अथ गर्भादिप्रश्न द्वारम्**

पृच्छन्त्याः पितृमन्दिरे पितृगृहाभिज्ञाक्षरं गुर्विणी,
पत्युश्चापि तदीय मन्दिर गतं गुर्व्या अभिज्ञा क्षरम्।
शुक्लारब्धदिनव्यवस्थित तिथीन्दत्वा मुनींश्च ध्रुवान्,
भागवह्नि भिरेककेन्द तनयो द्वाभ्यां सुता खेन खम् ॥१६३॥

अर्थात् प्रश्न करने वाली गर्भवती पिता के घर में हो तो पिता द्वारा रखा गया नाम और सुसराल में हो तो सुसराल के नाम के अक्षरों में पति के नाम के अक्षर मिलाकर अंक साधन कर उसमें शुक्ल प्रतिपदा से प्रश्नदिन की संख्या जोड़कर सात ध्रुवांक जोड़ दें। फिर तीन का भाग देने से १ शेष हो तो पुत्र। दो शेष हो तो कन्या और शून्य शेष हो तो गर्भपात होता है।

भाष्य : गर्भ में पुत्र है या कन्या ? यह जानने के लिए आचार्य ने यहाँ एक सरल विधि बतलाई है। यदि गर्भिणी पिता के घर में यह प्रश्न पूंछे तो पिता द्वारा रखा गया नाम और ससुराल में प्रश्न करे तो उसका सुसराल का प्रचलित नाम ग्रहण करना चाहिए। तात्पर्य यह है प्रश्नकाल और प्रश्न के स्थान पर उसका जो प्रचलित नाम हो उसी से विचार करना चाहिए। इस प्रकार गर्भिणी के नाम के अक्षरों में उसके पति के नाम के अक्षर मिला कर जो संख्या आवे, उसमें शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रश्नदिन तक की तिथि संख्या जोड़कर सात (ध्रुवांक) और जोड़ने से संख्या पिण्ड बन जाता है। इसमें तीन का भाग देने से एक शेष होने पर पुत्र, दो शेष होने पर कन्या और शून्य ० शेष होने पर

गर्भपात होता है। प्रश्नशास्त्र के अन्य आचार्यों ने भी लगभग इसी प्रकार संख्या पिण्ड बनाकर उसके आधार पर पुत्र या कन्या के जन्म का निश्चय किया है। संख्या पिण्ड बनाने की रीति सब आचार्यों की भिन्न-भिन्न है। किन्तु यहाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्न कुण्डली में भी पुत्र या कन्या के योग का विचार किये बिना केवल अंकों के आधार पर ही ऐसा फलादेश नहीं करना चाहिए। दोनों रीतियों से विचार कर बतलाया गया फल ही सत्य होता है।

एकस्मिन्प्रकृतिः शुभेन सहिते सौख्यातिरेकः क्षपा,
नाथेन श्रुतिरद्भुता प्रसरति, क्रूरेण पीड़ोद्भवः।
शुक्रे सप्तमगे स्त्रियाः पतिगतं पुत्रादिकं वा पदं,
पृच्छन्त्याः सुरत स्थितावनुभवो वाच्योऽष्टमस्थेऽपि च ॥१६४॥

अर्थात् पति, पुत्र या स्थान के बारे में पूछने वाली स्त्री की प्रश्न कुण्डली में सप्तम स्थान में शुक्र हो वैसी ही स्थिति (यथा वत्) रहती है। शुक्र शुभग्रह के साथ हो अधिक सुख, चन्द्रमा के साथ हो तो प्रसिद्धि और पापग्रह के साथ हो तो पीड़ा उत्पन्न होती है। अष्टम स्थान से भी इसी प्रकार फल कहना चाहिए।

भाष्य : पति, पुत्र एवं उनकी पदवृद्धि या प्रगति के बारे में प्रश्न करने वाली स्त्री के सप्तम स्थान में शुक्र की स्थिति उक्त विषयों के बारे में निर्णायक होती है। कारण यह है कि पुरुष की कुण्डली मेंसप्तम स्थान स्त्री का और स्त्री की कुण्डली में सप्तम स्थान पति का द्योतक होता है। इसी प्रकार शुक्र भी पुरुष की कुण्डली में पत्नी का और स्त्री की कुण्डली में पति का कारक

माना गया है। यदि यह शुक्र अकेला सप्तम स्थान में हो तो पति की स्थिति यथावत रहती है। किन्तु शुभ ग्रह से युक्त शुक्र सातवें होने पर सुख की वृद्धि, चन्द्रमा से युक्त होने पर कीर्ति और पाप ग्रहों से युक्त होने पर कष्ट आदि मिलते हैं। पुत्रादि का विचार भी इसी तरह करना चाहिए। अष्टम स्थान पति का धन एवं कुटुम्ब स्थान होता है। अतः उसमें भी उक्त ग्रहों की स्थिति होने पर इसी प्रकार का फल कहा गया है।

तुर्यं पश्यति तुर्यपोऽस्ति निहितं क्रूरेऽपि तस्मिन्भवे,
चेन्न प्राप्तिः खलु खेचरे च सदधिष्ठानं तदिन्दौ स्थिते।
स्वामिप्रेक्षणवर्जितेऽपि च तदस्तित्वं न तद्वार्षिके,
लाभश्चन्द्र युगीक्षणेन रहितं पूर्णं च चन्द्रेक्षणम् ॥१६५॥

अर्थात् चतुर्थेश चतुर्थ भाव को देखे तो (निधि) है, उस पर क्रूरग्रह की दृष्टि होने पर निधि होते हुए प्राप्त नहीं होती। चतुर्थ स्थान में ग्रह होने पर धन पात्रादि में होता है। वहाँ चन्द्रमा स्थित होने पर और चतुर्थेश की दृष्टि न होने पर भी निधि होती है। चन्द्रमा की युति दृष्टि न होने पर एक वर्ष तक लाभ नहीं होता और चन्द्रमा की दृष्टि से पूर्ण लाभ होता है।

भाष्य : चतुर्थ भाव निधि (जमीन में गढ़े धन) का प्रतिनिधि भाव है। अतः चतुर्थ स्थान पर चतुर्थेश की दृष्टि होने पर भूमि से गढ़ा हुआ धन या खजाना अवश्य होता है। यदि पाप ग्रह की इस भाव पर दृष्टि हो तो पाप प्रभाववश धन की प्राप्ति नहीं होती। यदि इस भाव में कोई ग्रह हो तो धन उसकी धातु के पात्र में रखा होता है। चन्द्रमा इस भाव का कारक ग्रह है। अतः इसकी चतुर्थ भाव पर दृष्टि या युति से धन की प्राप्ति

होती है। अन्य आचार्यों का भी प्रायः यही मत है।

> योगेऽस्तित्वविधायके हिमरश्मिर्नीचे विनष्टोऽपि वाऽ,
> मावस्यानिकट स्थितोऽपि कथितः प्राज्ञैः प्रमाणं तथा।
> लाभे चन्द्रयुगीक्षणे न भवतः सौम्यस्यते स्तस्तदा,
> वर्षेऽन्यत्र निधिग्रहाय सुधिया कार्यः प्रयत्नो महान् ।।१६६।।

अर्थात् निधि मिलने का योग होने पर यदि चन्द्रमा नीच, विनष्ट या अमावस्या के आसपास हो तो प्रयास नहीं करना चाहिए। लाभ स्थान पर चन्द्रमा की दृष्टि या युति न हो किन्तु शुभ ग्रह की युति दृष्टि हो तो एक वर्ष के बाद निधि निकालने का प्रयास करना चाहिए।

भाष्य : पूर्वोक्त श्लोक में वर्णित निधि होने के योग से पहले निधि का अस्तित्व निश्चय कर तब धन निकालने का प्रयास करना वास्तविकता में व्यावहारिक पक्ष है। किन्तु प्रश्नकुण्डली में यदि चन्द्रमा नीच राशि हो, या क्रूराक्रान्त, क्रूरयुत, क्रूर दृष्ट अथवा अमावस्या के निकट अस्तंगत हो तो धन निकालने में सफलता नहीं मिलती। कारण यह है कि चन्द्रमा चतुर्थ भाव का कारक और कार्यसिद्धि का बीज कहा गया है। अतः इसके दुर्बल या पाप प्रभावयुक्त होने पर चतुर्थ भाव का प्रमुख फल (निधि) मिलना सर्वथा असम्भव है। इसी प्रकार लाभ स्थान चन्द्रमा से युत दृष्ट न हो किन्तु शुभ ग्रहों से युत दृष्ट हो तो भी तुरन्त निधि नहीं मिलती। अतः एक वर्ष बाद खुदाई आदि प्रयास करने को कहा गया है। उदाहरणार्थ कुण्डली देखिये :

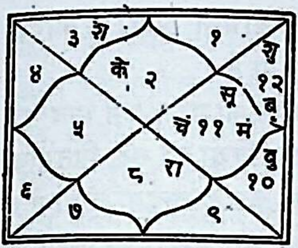

यहाँ चतुर्थेश सूर्य और चन्द्रमा की चतुर्थ स्थान पर पूर्ण होने से निधि होने का पूर्ण योग है। किन्तु चन्द्रमा सूर्य के साथ अस्तंगत एवं क्रूर ग्रह मंगल से युक्त है। अतः निधि नहीं निकालनी चाहिए।

जाया स्थानस्य भावा न भृगुसुतमृते नो शनिं धर्मभावा,
नो सूर्यं कर्मभावा न बुध हिमकरौ लाभ भावा भवन्ति।
विद्यास्थानस्य भावा न गुरुमवमिजं तातनिस्थान भावा,
नेन्दुं मृत्युर्न सर्वे न च तनयपदं भार्गवं श्वेत रश्मिम् ॥१६७॥

अर्थात् शुक्र के बिना स्त्री भाव का विचार, शनि के बिना धर्म भाव का विचार सूर्य के बिना कर्म भाव का विचार, बुध और चन्द्रमा के बिना लाभ भाव का विचार, गुरु के बिना विद्या भाव, मंगल के बिना पितृभाव, चन्द्रमा के बिना मृत्यु एवं अन्य भावों का विचार नहीं करना चाहिए।

भाष्य : ग्रन्थकार ने यहाँ भावों के कारक ग्रहों का निरूपण किया है। भावफल के प्रतिनिधि या प्रतीक ग्रह को कारक कहते हैं। ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने चरकारक एवं स्थिरकारक के रूप कारक ग्रहों के भेद का विस्तृत विवेचन किया है। किन्तु प्रश्न शास्त्र में सामान्यतया स्थिरकारक को ही भाव का कारक माना गया है। चरकारक के आधार पर महर्षि जैमिनी ने जन्मकुण्डली का फलादेश करने के लिए महत्वपूर्ण योगों का व्याख्यान किया है। ग्रन्थकार ने प्रश्नशास्त्र के आचार्यों की

परम्परा का अनुसरण करते हुए यहाँ विभिन्न भावों के कारक ग्रहों का संक्षिप्त रूप में प्रतिपादन किया है।

स्त्री भाव का कारक शुक्र, धर्मभाव का शनि, कर्म भाव का सूर्य, लाभ भाव का बुध और चन्द्रमा, विद्या का गुरु, पितृभाव का मंगल और मृत्यु एवं भावों का कारक चन्द्रमा होता है। अतः इन ग्रहों का विचार किये बिना इन भावों का फलादेश करना न तो शास्त्रीय ही है और न ही युक्ति संगत। फलादेश के लिए भाव, उसका स्वामी, और भाव के कारक इन तीनों का समान रूप से विचार करके ही फलादेश कहना चाहिए। उदाहरणार्थ यदि स्त्री सम्बन्धी प्रश्न है तो सप्तम भाव, सप्तमेश एवं शुक्र इन तीनों का बलाबल एवं शुभाशुभत्व का विचार करना आवश्यक है। मात्र सप्तम भाव या सप्तमेश के आधार पर फलादेश करना एकांगी या अपर्याप्त निर्णय होगा। इसी प्रकार अन्य भावों का विचार करते समय उनके कारक ग्रहों का भी अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए।

लग्नं चन्द्रोऽस्ति यस्मिस्तदथ दिनमणिर्यत्र जीवस्तन्नी-
चोऽस्तं गतो वा न यदि सुरगुरुर्वक्रितश्चेत्तदाद्यम्।
वित्कात्यक्ष्मांगजानां भवति किल बली यस्त्रयाणां तदीयं,
दौर्बल्यं यत्र मन्दस्तदपि च न बली शिष्टयोर्यं स्तदीयम् ॥१६८॥
एवं षट् प्रश्नलग्नान्यथ च षडपराण्येवमषां द्वितीया
न्येतेनैव क्रमेण स्फुटमिदमुदितं द्वादशप्रश्नलग्नम्।
एतेषां द्वादशानामपि च धनपदैर्द्वादशर्द्वं दशैवंता
र्तीयकैस्तथान्यैरपि सकलमिदं पूर्णमव्ध्याब्धिचन्द्र ॥१६९॥

अर्थात् १. लग्न, २. चन्द्रमा जिस राशि में हो वह राशि, ३.

जहाँ सूर्य स्थित हो (वह स्थान), ४. यदि गुरु नीच राशि, अस्त एवं वक्री न हो गुरु जहाँ बैठा हो, ५. मंगल, बुध एवं शुक्र इन तीनों में से बलवान् ग्रह जहाँ स्थित हो और ६. शनि या शनि के दुर्बल होने पर मंगल, बुध और शुक्र में से जो २ शेष बचें उनमें से बलवान् ग्रह जहाँ बैठा हो। इस प्रकार छः प्रश्न लग्न बनते हैं। शेष छः राशियों में भी बल के क्रम से छः लग्नों की कल्पना करने से एक ही प्रश्न लग्न में १२ लग्न उदित होते हैं। इसी प्रकार धन, पराक्रम, सुख आदि प्रत्येक भाव में १२-१२ लग्नों की कल्पना से द्वादश भावों में १४४ लग्न होते हैं।

भाष्य : यदि एक ही लग्न में पृच्छक अनेक प्रश्न करे अथवा अनेक व्यक्ति एक ही लग्न में प्रश्न करें तो उन प्रश्नों का विचार करने की रीति पर यहाँ ग्रन्थकार ने संक्षेप में प्रकाश डाला है। यदि ऐसी परिस्थिति हो तो विद्वान् दैवज्ञ प्रथम प्रश्न का उत्तर लग्न से, दूसरे प्रश्न का चन्द्रस्थित राशि को लग्न मानकर, तीसरे प्रश्न का उत्तर सूर्य स्थित राशि को लग्न मानकर, चौथे प्रश्न का उत्तर गुरु स्थित राशि को लग्न मानकर किन्तु ऐसा तभी करे जब गुरु नीच राशि गत, अस्तंगत या वक्री न हों, पाँचवे प्रश्न का उत्तर मंगल, बुध और शुक्र में से जिसके अंश अधिक हों, वह जिस राशि में स्थित हो उसे लग्न मानकर तथा छठे प्रश्न का उत्तर शनि जिस राशि में हो उसे लग्न मानकर देना चाहिए। यदि शनि निर्बल हो तो पूर्वोक्त मंगल, बुध एवं शुक्र में से जो २ ग्रह शेष बचे हैं उनमें अंशाधिक्य के आधार पर जो ग्रह बलवान् हो, वह जिस राशि में बैठा हो उस राशि को लग्न मान कर उक्त प्रश्न के फल का विचार करना चाहिए। नीलकण्ठ आदि विद्वानों ने भी एक लग्न में अनेक प्रश्नों का उत्तर देने के

लिए यही रीति अपनायी है।

यदि प्रश्नों की संख्या छः से अधिक हो तो जो छः भाव शेष बच गये हैं, उनकी राशियों के बल का विचार कर बलवान् के क्रम से छः अन्य लग्नों की कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार एक लग्न भाव से १२ लग्न बनते हैं, जिनके आधार पर १२ प्रश्नों का विचार एवं फलादेश सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

प्रश्नों की अधिकता होने पर उक्त रीति के अनुसार धन, पराक्रम एवं सुख आदि भावों से भी १२-१२ लग्नों की कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार एक प्रश्न लग्न के अल्पकाल में ही १४४ लग्नों की कल्पना से १४४ प्रश्नों का भी उत्तर देना सम्भव है। किन्तु एक लग्न में, जिसका समय मध्यमान से २ घन्टा या १२० मिनट होता है, सामान्य तया इतने अधिक प्रश्न पूछने का प्रसंग नहीं आता। इसलिए अन्य आचार्यों ने एक लग्न में ५ या ६ प्रश्नों का विचार करने की रीति ही बतलायी है।

उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति एक ही लग्न में लाभ, स्त्री एवं सन्तति से सम्बन्धी ३ प्रश्न किये। तत्कालीन प्रश्न लग्न के आधार पर प्रश्न कुण्डली इस प्रकार है।

यहाँ प्रथम प्रश्न लाभ का है। अतः उसका विचार कुंडली सं० १ से करना चाहिए।

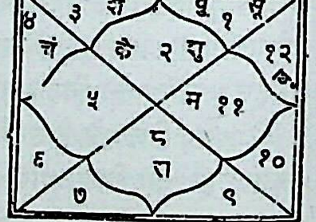

द्वितीय स्त्री सम्बन्धी प्रश्न का विचार करने के लिए चन्द्र स्थित कर्क राशि को लग्न मान कर कुण्डली सं० २ बनी। इससे द्वितीय प्रश्न का विचार करना चाहिए। तथा तृतीय सन्तति

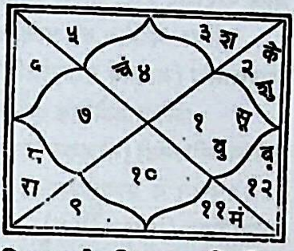

सम्बन्धी प्रश्न का विचार करने के लिए सूर्य स्थित राशि मेष

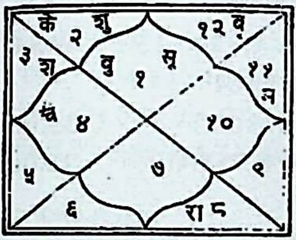

को लग्न मानकर कुण्डली सं० ३ के आधार पर विचार कर फलादेश करना चाहिए। इसी प्रकार यदि अधिक प्रश्न हों तो उनका विचार उक्त रीति से कर लेना चाहिए।

उपसंहार

ग्रहभाव प्रकाशाख्यं शास्त्रमेतत्प्रकाशितम्।
लोकानामुपकाराय श्री पद्मप्रभु सूरिभिः ॥१७०॥

अर्थात् यह ग्रह भाव प्रकाश नामक शास्त्र (ग्रन्थ) लोक के उपकार के लिए श्री पद्मप्रभु सूरि ने प्रकाशित किया।

भाष्य : अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भुवन दीपक का उपसंहार करते हुए आचार्य श्री पद्मप्रभु सूरि कहते हैं कि यह ग्रह एवं द्वादशभावों के फल को प्रकाशित करने वाला ग्रह भाव प्रकाश (भुवन दीपक) नामक ग्रन्थ में लोक कल्याण के लिए प्रकाशित किया। वस्तुतः यह ग्रन्थ विभिन्न प्रकार की दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं का प्रश्न कुण्डली के आधार पर समाधान करने में सर्वसाधारण का महान उपकार करता है।

प्राचीन एवं प्रामाणिक पुस्तकें

बृहद् पाराशर होरा शास्त्र (महर्षि पाराशर रचित)
फलित ज्योतिष का प्राचीन सर्वमान्य ग्रंथ 75.00

बृहज्जातक (आचार्य वराहमिहिर कृत)
फलित ज्योतिष एवं आयु जानने में विशेष सहायक 30.00

ताजिक नीलकंठी (नीलकंठ विरचित)
वर्षफल व प्रश्न सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ 30.00

फलदीपिका (मंत्रेश्वर कृत)
अचूक फलित के लिये दक्षिण भारत का प्रसिद्ध ग्रन्थ 50.00

जैमिनी सूत्र (महर्षि जैमिनी प्रणीत)
आयु निर्धारित करने में विशेष सहायक 12.00

मानसागरी—जन्म पत्री रचना एवं फलित के लिये
विख्यात उत्तम ग्रन्थ 35.06

जातकाभरण—जन्म कुण्डली के फलित कहने में उपयोगी 25.00

बृहत्संहिता (वाराही संहिता)
आचार्य वराह मिहिर कृत प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ हिन्दी व्याख्या सहित नवीन संस्करण जो अब तक नहीं मिलता था, तैयार है 60.00

जातकादेश मार्ग—फलित ज्योतिष का अनूठा ग्रन्थ हिन्दी व्याख्या सहित प्रथम बार प्रकाश में 30.00

त्रिफला (ज्योतिष) तीन प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों की हिन्दी व्याख्या 25.00

योग विचार (7 भागों का सैट) 30.00

नव ग्रह विचार (ह० न० काटवे नागपुर)
प्रत्येक ग्रह पर प्राचीन एवं नवीन मतों का तुलनात्मक अध्ययन, एवं लेखक का अपना अनुभव 50.00

लघु पाराशरी भाष्य (दीवान रामचन्द्र कपूर) 45.00
प्रसिद्ध पुस्तक की विस्तृत व्याख्या, विभिन्न आचार्यों के मत

पत्र लिखकर वी० पी० से मंगायें—

रंजन पब्लिकेशन्स,
16, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-110002

परिशिष्ट

प्रश्न-कुण्डली कैसे बनायें ?

प्रश्न-कुण्डली बनाने की कई रीतियाँ विद्वान् आचार्यों ने बतलाई हैं। प्रश्न-कुण्डली बनाने के लिए इष्टकाल का साधन कर सूर्य एवं अन्य ग्रहों का स्पष्टीकरण कर, इष्टकाल एवं स्पष्ट सूर्य के द्वारा स्पष्ट लग्न का साधन कर लेना चाहिए। इस प्रकार जो लग्न ज्ञात हो उसे कुण्डली के प्रथम भाव में रखकर आगे १२ भावों में अनुलोम क्रम से १२ राशियों को रख देना चाहिए और स्पष्ट ग्रह जिस-जिस राशि में हों उन्हें कुण्डली में उन-उन राशियों में स्थापित कर दें। लग्न-कुण्डली बन जाती है।

इष्टकाल-साधन

प्रश्न-कुण्डली का गणित इष्टकाल के आधार पर ही किया जाता है। अतः इष्टकाल बनाने के नियमों को जान लेना आवश्यक है। सूर्योदय से लेकर प्रश्न पूछने के समय तक के काल को इष्टकाल कहते हैं। इसके बनाने के निम्नलिखित नियम हैं :

(i) सूर्योदय से लेकर दिन के १२ बजे तक प्रश्न किया जाय तो प्रश्नकाल और सूर्योदयकाल के अन्तर (घण्टा-मिनट) को ढाई गुना करने से घटी-पलात्मक इष्टकाल होता है।

उदाहरण—सं० २०३२ आषाढ़ शुक्ला बुधवार, दि० २३ जुलाई, १९७५ को प्रातः १०/२५ बजे किसी ने प्रश्न किया।

अतः उक्त नियमानुसार :

१०/२५ प्रश्नकाल

−५/४१ = दिल्ली का सूर्योदयकाल

४/४४

इस अन्तर को ढाई गुना करने से ११ घटी ५० पल इष्टकाल हुआ

(ii) दिन के १२ बजे से सूर्यास्त तक प्रश्न किया जाय तो प्रश्नकाल एवं सूर्यास्तकाल के अन्तर को ढाई गुना कर दिनमान में से घटाने पर इष्टकाल होता है।

उदाहरण—सं० २०३२ आषाढ़ शुक्ला १४ मंगलवार, दिनांक २२ जुलाई १९७५ को अपराह्न ३/३० बजे प्रश्न किया गया।

अत: उक्त नियमानुसार :

१९/१४ सूर्यास्त काल स्टैं० टा०

१५/३० = प्रश्न काल स्टैं० टा०

३/४४

इस अन्तर को ढाई गुना करने से ९ घटी ३० पल हुआ।

३३/५४ दिनमान

−९/३०

२४/२४ = इष्टकाल

(iii) सूर्यास्त से रात्रि १२ बजे तक प्रश्न किया जाय तो प्रश्नकाल एवं सूर्यास्त के अन्तर को ढाई गुना कर दिनमान में जोड़ने से इष्टकाल होता है।

उदाहरण : सं० २०३२ आषाढ़ शुक्ला ११ शनिवार दिनांक १९ जुलाई, १९७५ को रात्रि ८/२० बजे प्रश्न किया गया।

अत: उक्त नियमानुसार—

८/२० प्रश्नकाल

७/१६ सूर्यास्तकाल

१/ ४

(१/४) × २½ = २ घटी ४० पल

फिर ३४/१ दिनमान

× २/४० = अन्तर घटीपल

३६/४१ इष्टकाल

(iv) रात्रि के १२ बजे के बाद से सूर्योदय के पहिले तक यदि प्रश्न किया जाय तो प्रश्नकाल और सूर्योदय के अन्तर को ढाई गुना कर ६० घटी में से घटाने पर इष्टकाल होता है।

(v) सूर्योदय से लेकर प्रश्नकाल तक जितना घण्टा मिनटात्मक अन्तर हो उसे ढाई गुना करने से इष्टकाल होता है।

उदाहरण : सं० २०३ आषाढ़ शुक्ला १२ रविवार २० जुलाई, १९७५ [illegible] १६/२० बजे प्रश्न किया। अतः नियमानुसार—

१६/२०	प्रश्नकाल
५/३९	सूर्योदयकाल
१०/४१	=अन्तर

इस अन्तर को ढाई गुना करने से २६ घटी ४२ पल ३० विपल इष्ट काल हुआ।

ग्रह स्पष्टीकरण

आजकल प्रायः सभी पञ्चाङ्गों में दैनिक स्पष्ट ग्रह दिये रहते हैं। उनके आधार पर अनुपात से इष्टकालीन स्पष्ट ग्रह का साधन कर लेना चाहिए। प्रश्नकुण्डली से यथार्थ फलादेश करने के लिए अपेक्षित है कि दृग्गणितीय या चित्रापक्षीय पंचाङ्ग का प्रयोग करें। अन्य पंचाङ्गों में गणित की स्थूलता के कारण प्रश्न कुण्डली एवं उसका फलादेश यथार्थ रूप से नहीं मिल पाता।

लग्न साधन

प्रश्नकालीन स्पष्ट सूर्य और इष्टकाल द्वारा लग्न सारिणी की सहायता से स्पष्ट लग्न का साधन किया जाता है। लग्न सारिणी में राशि का उल्लेख बायीं ओर तथा अंश का उल्लेख ऊपर के कोष्ठक में किया गया है। स्पष्ट सूर्य के राशि तथा अंश के आधार पर लग्न सारिणी से अंक लेकर उनमें इष्टकाल (घटी एवं पल) जोड़ देना चाहिए। इन दोनों का योग सारिणी में जिस कोष्ठक के आसन्न हो, उसके बायीं ओर राशि का अंक और ऊपर अंश का अंक होता है। इस प्रकार लग्न के राशि-अंश का ज्ञान

कर अनुपात या त्रैराशिक से कला-विकला का साधन कर लेना चाहिए। सारिणी से लग्न साधन के प्रसंग में यह ध्यान रखने योग्य बात है कि अपने नगर का जितना अक्षांश हो, उसी अक्षांश की लग्न सारिणी द्वारा लग्न साधन करना चाहिए। पाठकों की सुविधा के लिए यहां २५° उत्तरी अक्षांश से ३१° उत्तरी अक्षांश की लग्न सारणियां आगे दी जा रही हैं। इनकी सहायता से बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब एवं हिमाचल प्रदेश के प्रायः सभी प्रमुख नगरों का लग्न साधन किया जा सकता है।

किस नगर के लिए कौन-सी लग्न सारिणी का प्रयोग करें? यह निश्चय करने के लिए बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब एवं हिमाचल प्रदेश के प्रमुख नगरों के अक्षांशादि की तालिका नीचे दी जा रही है। इस तालिका से अपने नगर का अक्षांश ज्ञात कर, उस अक्षांश की लग्न सारिणी द्वारा लग्न साधन सुगमतापूर्वक किया जा सकता है, अस्तु।

उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगर और उनके अक्षांश

नगर	अक्षांश	रेखांश
अयोध्या	२६-४८	८२-१४
अलीगढ़	२७-५४	८२-२
अल्मोड़ा	२९-३७	७९-४०
आगरा	२७-१०	७८-५
आजमगढ़	२६-३	८३-१३
इटावा	२६-४७	७९-३
इलाहाबाद	२५-२८	८१-५४
उन्नाव	२६-४८	८०-४३
कन्नौज	२७-३	७९-५८
कानपुर	२६-२८	८०-२४
गाजियाबाद	२८-४०	७७-२८

नगर	अक्षांश	रेखांश
गाजीपुर	२५-३४	८३-३४
गोरखपुर	२६-४५	८३-२४
गढ़वाल	३०-००	७८-३८
गोंडा	२७-२८	८२-१
झांसी	२५-२७	७८-३७
देहरादून	३०-१९	७८-४
नैनीताल	२९-२३	७९-३०
पीलीभीत	२८-३८	७५-५१
फतेहगढ़	२७-२३	७९-४०
फरुंखाबाद	२७-२४	७९-३७
फैजाबाद	२६-४७	८२-१२
बद्रीनाथ	३०-४०	७९-३२
बनारस	२५-२०	८३-०
बरेली	२८-२२	७९-२७
बुलन्दशहर	२८।२४	७७·५४
मथुरा	२७-२८	७७-४१
मंसूरी	३०-२७	७८-६
मिर्जापुर	२५-१०	८२-३७
मुजफ्फरनगर	२९-२८	७७-४४
मेरठ	२९-१	७७-४५
रानीखेत	९-४०२	७९-३२
रामपुर	२८-४८	७९-५
रायबरेली	२६-१४	८१-१६
लखनऊ	२६-५५	८०-५९
लखीमपुर	२७-५७	८०-४९
वाराणसी	२५-२०	८३-००
वृन्दावन	२७-३३	७७-५४

नगर	अक्षांश	रेखांश
शाहजहाँपुर	२७-५४	७९·५७
सहारनपुर	२९-५८	७७-२३
सुलतानपुर	२६-६६	८२-७
हरदोई	२७-२३	८०-१०
हरिद्वार	२९-५८	७८-१३
हाथरस	२७-३६	७८-६

बिहार के प्रमुख नगरों और उनके अक्षांशादि

नगर	अक्षांश	रेखांश
किशनगंज	२६-१०	८७-२
गया	२४-४९	८५-१
गोगरी	२५-२८	८६-३८
जमालपुर	२५-१९	८६-३२
दरभंगा	२६-१०	८५-५१
पटना	२५-३७	८५-१३
पूर्णिया	२५-४९	८७-३१
बक्सर	२५-३५	८४-१
बाँकीपुर	२५-४०	८५-१२
बुद्धगया	२४-४१	८४-५९
भागलपुर	२५-१५	८७-२
मुजफ्फरपुर	२६-७	८५-२७
मुंगेर	२५-२३	८६-३०
मोकामा	२५-२४	८५-५५
मोतिहारी	२६-४०	८५-५७
संथाल परगना	२४-३०	८७-००

राजस्थान के प्रमुख नगर और उनके अक्षांशादि

नगर	अक्षांश	रेखांश
अलवर	२७-३४	७६-३७
उदयपुर	२७-४२	७५-३३
कोटा	२५-१०	७५-५२
जयपुर	२६-५५	७५-५२
जालोर	२५-२२	७२-५८
जैसलमेर	२६-५५	७०-५७
जोधपुर	२६-१८	७३-४
टोंक	२६-११	७५-५०
डींग	२७-२८	७७-२०
थार	२७-००	७१-००
धोलपुर	२६-४२	७७-५३
पंचभद्रा	२५-५५	७२-२१
पाटण	२७-४६	७६-१
फ़तेपुर	२५-००	७६-२
बीकानेर	२८-१	७३-२२
बून्दी	२५-२७	७५-४१
भरतपुर	२७-१५	७७-३०
राजगढ़	२८-१०	७५-००
लछमनगढ़	२७-५०	७५-४
सिरोही	२४-४०	७२-४५
सवाई माधोपुर	२८-५८	७६-३०
सांभर	२६-५४	७५-१५
चित्तौड़गढ़	२४-५४	७४-४२
कांकरोली	२५-२	७३-४८

हरियाणा, पंजाब, दिल्ली एवं हिमाचल प्रदेश के प्रमुख नगरों के अक्षांशादि

नगर	अक्षांश	रेखांश
अमृतसर	३१-३७	७४-५५
अम्बाला	३०-२१	७६-५२
ऊधमपुर	३२-५६	७४-४३
कपूरथला	३१-२३	७५-२५
करनाल	२९-४२	७७-२
कांगड़ा	३२-५	७६-१८
कुरुक्षेत्र	३०-००	७६-४८
गुड़गांवा	२८-३७	७७-४
गुरदासपुर	३२-२	७५-२७
चम्बा (हि० प्र०)	३२-३४	७६-१०
चण्डीगढ़	३०-४०	७६-५२
जलन्धर	३१-१९	७५-१८
जीन्द	२९-१९	७६-२३
जोगिन्दर नगर	३१-५०	७६-४५
तरनतारन	३१-२८	७४-५८
थानेसर	२९-५८	७६-५६
सोलन	३०-५७	७७-६
सुलतानपुर	३१-५८	७७-७
दिल्ली	२८-३८	७७-१२
धर्मशाला	३२-१६	७६-२३
नाभा	३०-२३	७६-९
पटियाला	३०-२०	७६-२५
पटौदी	२८-१८	७६-४८
पठानकोट	३२-१५	७५-४२

पानीपत	२६-२३	७७-१
फतेहाबाद	२६-३१	७५-२०
फरीदकोट	३०-४०	७४-५७
फाजिल्का	३०-२५	७४-४
फिरोजपुर	३०-५५	७४-४०
बटाला	३१-४६	७५-१४
भटिण्डा	३०-११	७५-००
रोहतक	२८-५४	७६-३८
लोहारु	२८-१६	७५-४५
लुधियाना	३०-५५	७५-५४
शिमला	३१-६	७७-३३
होशियारं	३१-३२	७५-५७

भगवान् दत्तात्रेय विरचित तन्त्रशास्त्र का अद्भुत-ग्रन्थ

दत्तात्रेय-तन्त्र

लेखक : डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी

यह ग्रन्थ परिचय विभाग और प्रयोग विभाग रूप दो खण्डों में तन्त्रशास्त्र की शास्त्रीय साधना-विधि के समग्र परिचय के साथ विस्तृत भूमिका से अलंकृत है। द्वितीय विभाग में दत्तात्रेय-तन्त्र की साधना के लिए अत्यावश्यक श्री दत्त प्रभु के मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, कवच, स्तोत्र और शास्त्रोक्त चमत्कारी प्रयोगों के विधि-विधान दिए गए हैं तथा विभिन्न प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर संशोधन करके सम्पादित कर सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद सहित प्रस्तुत किया है।

28 पटलों में निर्मित यह तन्त्र ग्रन्थ उत्कीलन आदि विधानों की अपेक्षा रखे बिना ही सर्वदोषों से रहित शीघ्र सिद्धि देनेवाला बतलाया गया है, जिसमें परम गोपनीय विषय संकलित है। जिनमें क्रमशः 1. मारण, 2. मोहन, 3. स्तम्भन, 4. विद्वेषण, 5. उच्चाटन, 6. वशीकरण, 7. आकर्षण, 8. इन्द्रजाल, 9. यक्षिणी साधन, 10. रसायन प्रयोग, 11. कालज्ञान, 12. अनाहार, 13. साहार, 14. भूमिगतनिधि दर्शन, 15. मृतवत्सा, बाँझपन तथा पुत्र-सन्तति न होने के दोषों का निवारण तथा पुत्र-प्राप्ति के उपाय, 16. जयवाद-युद्ध में तथा जुआ आदि में जीतने के उपाय, 17. वाजीकरण, 18. भूतग्रह निवारण, 19. सिंह-व्याघ्र भय निवारण, तथा 20. जहरीले जीवों के भय से बचने के प्रयोग आदि मन्त्र और विधि सहित पूरे 28 पटलों में दिए हैं।

ऐसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का सांगोपांग विवेचन और प्रामाणिक अनुवाद आज तक नहीं हो पाया था। विद्वान् लेखक ने अपने दीर्घकालीन अनुभव और शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर सर्वांगपूर्ण बनाने का कार्य किया है।

पूरा ही ग्रन्थ पाठकों और विशेषकर तन्त्र प्रयोगों में रुचि रखनेवाले के लिए बड़ा ही उत्तम मार्गदर्शक है। साथ ही एक श्रेष्ठ मूल्यवान निधि भी।

मूल्य 80 रुपये

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य का उच्चकोटिक ग्रन्थ

सौन्दर्य लहरी

व्याख्याकार : डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी

प्रस्तुत ग्रन्थ आदि शंकराचार्य द्वारा तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र तथा योगशास्त्र के रहस्यपूर्ण तथ्यों को प्रकट करने वाला अद्भुत संग्रह है।

वर्षों से साधना पथ पर आगे बढ़ते हुए आपके सुपरिचित विद्वान डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी, एम. ए. (संस्कृत तथा हिन्दी) पी-एच.डी., डी.लिट, तन्त्रागम भास्कर ने अपनी गुरु-परम्परा एवं विभिन्न टीकाओं के समीक्षण से 'सौन्दर्य लहरी' के हृदय को प्रस्तुत करने का पुरुषार्थ किया है।

विशेषता : यह है कि शैली सरल, रोचक एवं गूढ़ता से मुक्त, समझ में आए और स्वयं लाभ उठाया जा सके।

मूल्य 150/-

विद्वान लेखक की अन्य उत्तम पुस्तकें

- रुद्रयामल तन्त्र पृष्ठ संख्या 304 मूल्य 125/-

इस जैसा ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ, जो व्यवहार एवं सरलता में श्रेष्ठ सिद्ध रहा हो।

- दत्तात्रेय तन्त्र 80/-
- महामृत्युजंय (साधना एवं सिद्धि) 50/-
- तन्त्रशक्ति 40/-
- मन्त्र शक्ति 40/-
- माहेश्वर तन्त्र 20/-
- यन्त्रशक्ति (2 भागों में) सम्पूर्ण 80/-

पत्र लिखकर वी. पी. से मँगाएँ फोन : 327 8835

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

हाथ का अँगूठा-भाग्य का दर्पण

लेखकः ज्योतिष शिरोमणि पं॰ भोजराज द्विवेदी

अँगूठा चैतन्य शक्ति का प्रधान केन्द्र है। इसका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। फलतः अँगूठा इच्छा शक्ति का केन्द्र माना जाता है। यह व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। हाथ की रेखाओं का जितना महत्त्व होता है, उससे ज्यादा महत्त्व अँगूठे का माना गया है। अँगूठा प्राण-शक्ति का द्योतक भी है।

अँगूठा अँगुलियों का राजा कहलाता है। किसी भी वस्तु की पकड़ अँगूठे के विना सम्भव नहीं है। मस्तिष्क के भावों का स्पष्ट सम्बन्ध अँगूठे की कौशिकाओं तक होने से मस्तिष्क के भावों का स्पष्ट अंकन अंगूठे के द्वारा ही सम्भव है। यही कारण है कि कुछ वैज्ञानिक हस्ताक्षर द्वारा मनुष्य की प्रकृति का अनुमान लगाते हैं।

अँगूठा तर्क ज्ञान एवं विवेक शक्ति का द्योतक है इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं। अँगूठे पर बारीक रेखाओं के द्वारा कुछ चिन्ह व आकृतियाँ वनी होती हैं जिसके निरुपण से यह सिद्ध होता है कि विश्व में प्रत्येक प्राणी की प्रवृत्तियाँ उसकी चेष्टाएँ, उसकी विचार शक्ति भिन्न-भिन्न होती हैं।

केवल अँगूठे के द्वारा जानी जा सकने वाली कुछ प्रमुख बातें:

प्रेम, तर्कशक्ति, विवेक, जीवन का विस्तार, आयु, दुर, भाग्योदय, भाग्यास्त, भविष्य, रोग, आत्मवल, व्यक्ति की परीक्षा, गुप्तेन्द्रिय का आकार-प्रकार, प्राणशक्ति इच्छाशक्ति, प्राणवायु की गति, जन्म समय इत्यादि विषयों का विशद वर्णन इस ग्रंथ में प्रस्तुत है।

अँगूठे के महत्त्व को अनेक भविष्यवक्ताओं ने जाना और माना है किन्तु अँगूठे पर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इस दिशा में लेखक पं॰ भोजराज द्विवेदी की यह रचना अपने आप में दुर्लभ तथा इस विषय पर सर्वप्रथम प्रकाशित पूर्ण रचना है।

मूल्यः 100 रुपये

ज्योतिष एवं तंत्रमंत्र साहित्य का वड़ा सूचीपत्र 5 रु॰ का डाक टिकट भेजकर मंगवायें

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

फोनः 327 88 35

प्रामाणिक व मौलिक रचना

शरीर-लक्षण एवं चेष्टाएँ

(अंग विद्या Body Language)

लेखक: **डॉ॰ सुरेशचन्द्र मिश्र** ज्योतिषाचार्य, एम॰ए॰, पी-एच॰ डी॰

प्रस्तुत ग्रंथ शरीर पर विद्यमान लक्षण चिन्ह, रेखाएं, तिल, मस्सा आदि के साथ साथ विभिन्न अंगों की बनावट, रंगत, सौन्दर्य व लावण्य मानवीय भविष्य के बहुत से अनकहे पहलुओं को छूते हैं। जिस प्रकार जन्मकालीन ग्रह स्थिति से भविष्य का निर्धारण होता है उसही प्रकार लक्षण विज्ञान द्वारा भी पूर्ण जानकारी मिलती है विशेषता यह कि आप बिना किसी दूसरे की सहायता के स्वयं भविष्य पढ़ सकते हैं।

इस विषय पर इतनी ठोस सामग्री के साथ आज तक कोई पुस्तक नहीं लिखी गई ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता है

चेष्टाओं के अपने निराले संकेत, जन्मकुंडली का कोई बंधन नहीं

पृष्ठ संख्या: 256 (जिल्द से सज्जित); *मूल्य:* 150 रुपये; *डाक व्यय:* 20 रुपये

प्रश्न-ज्ञान (आर्यासप्तति:)

व्याख्याकार: **डॉ॰ शुकदेव चतुर्वेदी** ज्योतिषाचार्य

आचार्य भट्टोत्पल ने अनेक ज्योतिष ग्रन्थों पर टीकाएं कीं और प्रसिद्धि प्राप्त की, लेकिन पुस्तक लिखी केवल एक

विषय जो आपको मिलेंगे:

यात्रा, जय पराजय, रोग, विवाह, गर्भ व सन्तति, भोजन कैसा, मूक प्रश्न, वायु परीक्षा, वर्षा, चोरी, कार्यसिद्धि व उसका समय, मुकदमा विचार तथा प्रश्न शास्त्र के सामान्य सिद्धान्त आदि आदि।

आश्चर्य करेंगे कि पुस्तक लघुकार्य होते हुए है अनूठी (अर्थात गज़ब की) जैसा कि आज के पाठक चाहते हैं

व्यवहार में उतरे खरी और प्रश्न हों सामयिक

पृष्ठ संख्या: 128 *मूल्य:* 50 रुपये *डाक व्यय:* 15 रुपये

रंजन पब्लिकेशन्स

16 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 ✆ 3278835

ज्योतिष साहित्य में प्रथम श्रेणी का मौलिक ग्रन्थ

अष्टकवर्ग महानिबन्ध

(Secrets of Ashtaka Varga)

ग्रन्थकार—आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ पर्वतीय

हिन्दी टीका एवं विस्तृत व्याख्या—डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र

ज्योतिष शास्त्र को वैदिक ज्ञान का नेत्र कहा गया है। इस कथन की प्रामाणिकता फलादेश की सत्यता एवं सटीकता पर आधारित है। इस तथ्य से सभी ज्योतिष जिज्ञासु परिचित हैं। एक तरफ जहां समस्त भारत के ज्योतिर्विदों ने अष्टकवर्ग की इस अद्‌भुत, वैज्ञानिक एवं सटीक फल-कथन प्रणाली को ललक के साथ अपनाया हुआ है, वहीं दूसरी तरफ पाश्चात्य ज्योतिषी भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके हैं।

हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित इस ग्रन्थ रत्न में आप पाएंगे—

(१) विषय की सम्पूर्ण जानकारी। (२) गूढ़ विषय का विद्वत्तापूर्ण, शास्त्रीय किन्तु सरल विवेचन। (३) फलादेश की शक्ति को धारदार बनाने का अद्वितीय ढंग। (४) समग्रता, सरलता एवं विषय की उच्चता के साथ व्यावहारिकता का समावेश। (५) चमत्कारिक फल कहकर यश एवं धन की प्राप्ति।

फलादेश का सूक्ष्मतम अनुसंधानपूर्ण कार्य प्रथम श्रेणी के मौलिक ग्रन्थों की शृंखला में एक अपूर्व वृद्धि। ज्योतिष के फलित विभाग में मेरुदण्ड समान (जैसा स्थान) आपके ज्ञान में अपूर्व वृद्धि। मूल्य : २०० रुपये

आचार्य बादरायणकृत

प्रश्न विद्या

व्याख्याकार—डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र

लगभग १५०० वर्ष पुरानी प्रस्तुत रचना आचार्य बादरायण की एकमात्र उपलब्ध पुस्तक है। बादरायण संहिता के एक अध्याय रूप में प्रोक्त इस पुस्तक में ७६ आर्या छन्दों में प्रश्न सम्बन्धी विषयों का विद्वत्तापूर्ण सार संक्षेप किया है।

- ☐ जीवन के सभी दैनन्दिन प्रश्नों का ज्योतिषीय समाधान।
- ☐ नष्ट जातक, आयुर्निर्णय एवं वर्षा सम्बन्धी प्रश्नों का सटीक समाधान।
- ☐ बादरायणसंहिता का एक अध्याय।
- ☐ बादरायण के सभी उपलब्ध वचनों का एकत्र संग्रह।
- ☐ वराहमिहिर से भी प्राचीन एकमात्र उपलब्ध प्रश्न ग्रन्थ।
- ☐ अन्य आचार्यों के मतों की तुलना एवं निर्णय। मूल्य : 50 रुपये

प्रश्नों के अद्वितीय ग्रंथ

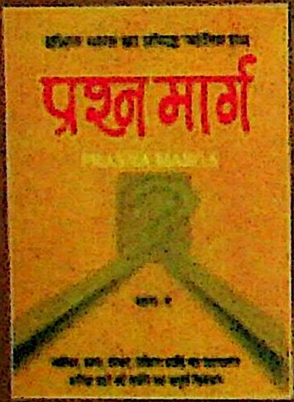

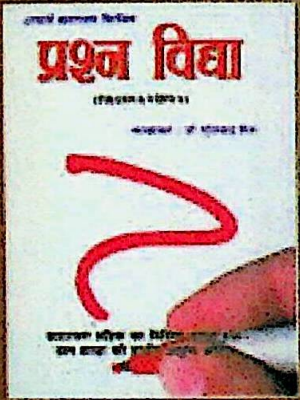

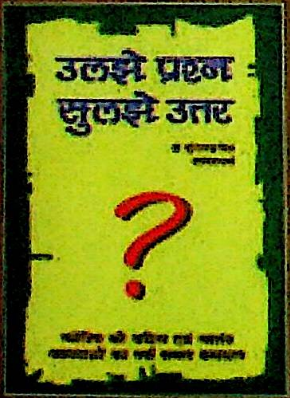

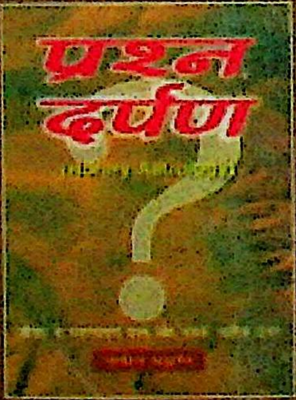

रंजन पब्लिकेशन्स
16, अन्सारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
फोन : 23278835, 23282998